|| गायत्री चालीसा ||
ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥
ओ३म्
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओ३म

गायत्री-चालीसा

लेखक

परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

गायत्री चालीसा क्यों?

आज बाज़ार में चालीसाओं की भरमार है। हनुमान चालीसा, दुर्गा चालीसा, लक्ष्मी चालीसा, शिव चालीसा, गङ्गा चालीसा, तुलसी चालीसा, कबीर चालीसा आदि पचासों चालीसा हैं। पढ़े-लिखे, बी०ए०, एम०ए०, शास्त्री, आचार्य बिना अर्थ जाने तोतारटन्त की भाँति इनका प्रतिदिन पाठ करके अपनी शक्ति और समय का अपव्यय कर रहे हैं। स्वार्थी लोगों ने पैसा कमाने के लिए इनका निर्माण किया है। धर्मभीरु लोगों को परमात्मा के मार्ग से हटाकर मनुष्यपूजा और जड़पूजा में धकेल रहे हैं। जड़ की पूजा करके लोगों की बुद्धि जड़ हो गई है। इन चालीसाओं में क्या लिखा है, उसका थोड़ा-सा नमूना देखिए—

हनुमान् चालीसा में हनुमान्‌जी के तीन पिता बताये हैं—

अंजनीपुत्र पवनसुत नामा।

और *संकरसुवन केसरीनन्दन॥*

क्या किसी के तीन पिता हो सकते हैं?

बालब्रह्मचारी, वेदों और व्याकरण के महाविद्वान् हनुमान् जी के तीन पिता बताना उनकी स्तुति है या निन्दा? तनिक हृदय पर हाथ रखकर सोचिए और विचारिए।

और देखिए—

जुग सहस्र योजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥

चार सहस्र योजन, अर्थात् बत्तीस हजार मील [लगभग ५१ सहस्र किलोमीटर] की दूरी पर सूर्य है। हनुमान्‌जी ने मधुर फल समझकर उसे निगल लिया।

सूर्य १५ करोड़ किलो मीटर की दूरी पर है। इसके बहिर्भाग का तापमान [Surface Temperature] बाहर हज़ार डिगरी फारन हाइट है। सूर्य पृथिवी से साढ़े तेरह लाख गुणा बड़ा है।

पृथिवी की गोलाई २५,००० मील है। सूर्य हमारी पृथिवी से तैतीस खरब, पिछतर अरब मील बड़ा है। इतने बड़े सूर्य को निगलनेवाले हनुमान् की कल्पना कीजिए, क्या उसका एक पाँव भी पृथिवी पर समा सकेगा?

कबीर चालीसा में कबीर को परमेश्वर बना दिया—

दीन जान अपनाइए हे कबीर भगवान।
बुद्धि विवेक न मोहि कछु रहित योग मख ज्ञान॥

लीजिए, एक प्रसङ्ग रविदास चालीसा का भी देख लीजिए—

गंगा मातु के भक्त अपारा। कौड़ी दीन्ह उनहिं उपहारा॥
पंडित जन ताको लै जाई। गंग मात को दीन्ह चढ़ाई॥
हाथ पसार लीन्ह चौगानी। भक्त की महिमा अमित बखानी॥

गङ्गा जड़ है, उसके न हाथ हैं, न पाँव। गङ्गा का हाथ निकालकर कौड़ी लेना असम्भव गप्प है।

राम चालीसा में लिखा है—

राम नाम है अपरम्पारा। चारहु वेदन यही पुकारा॥

वेद में तो परमात्मा का सर्वोत्तम नाम ओम् बताया है। उसी के जप का विधान है—

ओ३म् क्रतो स्मर। —यजुः० ४०।१५

हे कर्मशील जीव! तू ओम् का स्मरण कर।

वेद में न 'रामं स्मर' है, न 'कृष्णं और शिवं स्मर' है।

और एक गप्प देखिए—

गणपति नाम तुम्हारो लीन्हो। तिनको प्रथम पूज्य तुम कीन्हो॥

पुराणों के अनुसार गणेशजी ने रामकी नहीं अपनी माता और पिता की परिक्रमा की थी, इससे उनकी अग्रपूजा होने लगी।

सभी चालीसाओं में इसी प्रकार की असम्भव गप्पें भरी हुई

हैं। ये सभी चालीसा मनुष्य को प्रभु से दूर ले-जाते हैं, अतः त्याज्य हैं।

वेद परमेश्वर का ज्ञान है। वेद मनुष्य को सत्यमार्ग पर ले-जाता है। वेद की शिक्षाओं पर आचरण करने से मनुष्य का कल्याण सम्भव है। वेद की शरण में आइए और अपने जीवन को सफल बनाइए। गायत्री चालीसा में चारों वेदों से गायत्री छन्दवाले ४० मन्त्रों का चयन करके उनकी सुललित, हृदयहारी एवं मनोहर व्याख्या की गई है। इन मन्त्रों में न अतिशयोक्ति है, न असम्भव गप्पें हैं। वेद की शिक्षाओं पर आचरण करने से मनुष्य का जीवन उच्च, दिव्य और महान् बनेगा। मन्त्रों को पढ़िए, विचारिए, चिन्तन और मनन कीजिए, आपका मार्ग प्रशस्त होगा।

विदुषामनुचरः
—जगदीश्वरानन्द
४.१.२००१

वेद-मन्दिर
लेखरामनगर [इब्राहीमपुर],
दिल्ली-११० ०३६
दूरभाष-७२०२२४९

मन्त्रानुक्रम

१. महामन्त्र गायत्री

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ —यजुः० ३।३५

हम सवितुः=सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, सबको सुप्रेरणा देनेवाले, प्राणियों को गर्भ के दुःख से छुड़ाकर मोक्ष प्रदान करनेवाले **देवस्य**=आनन्दप्रद, चाहने योग्य, सबको प्रमुदित करनेवाले परमात्मा के **तत्**=उस **वरेण्यम्**=वरण करने योग्य, छाँटने योग्य, चुनने योग्य **भर्गः**=पापनाशक तेज का, सब जगत् को प्रकाशित करनेवाले तेज का, अपने स्वरूप से प्रकाशमान तेज का, लोकों को प्रकाशित करनेवाले तेज का **धीमहि**=ध्यान करते हैं, मनन और चिन्तन करते हैं। **यः**=वह जगदीश्वर **नः**=हमारी **धियः**= बुद्धियों को, कर्मों को, वाणी को, प्राणशक्ति को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में प्रेरित करे, विद्या, विज्ञान, सद्धर्म, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियित्व और परब्रह्मानन्द-प्राप्ति आदि उत्तम कर्मों में **प्रचोदयात्**=प्रेरित करे।

परमात्मा सविता है, सबको सुप्रेरणा देनेवाला है। जब भी मनुष्य कोई बुरा कर्म करने लगता है, तभी उसके हृदय में भय, शङ्का, लज्जा उत्पन्न होती है और उसे दुष्कर्म करने से रोकती है। यह ध्वनि आत्मा की नहीं परमात्मा की है, क्योंकि आत्मा तो बुरा कर्म करने के लिए तैयार हो गया था। जब मनुष्य कोई अच्छा कर्म करता है तब आनन्द, उत्साह और प्रसन्नता की लहरें उठती हैं, यह भी परमात्मा की प्रेरणा है।

परमात्मा वरेण्यम्-वरण करने योग्य है, वह वरण करने योग्य है, क्योंकि उसमें इतना आकर्षण है कि मनुष्य उसकी ओर खिंचता चला आता है। उसका आकर्षण अनुपम है, वह सुभग है, शिव है, सुन्दर है, चन्द्र है, चित्र है, अद्भुत है, अतः कौन उसका वरण करना न चाहेगा? वह हमारा पिता है, सब

हमारी माता है, वह हमारा बन्धु है, सखा है, वह हमारा सबसे प्यारा अतिथि है, सबसे अधिक समीपी है, अतः उसे कौन वरना नहीं चाहेगा?

भर्गो देवस्य धीमहि—हम परमात्मा के पापनाशक तेज का ध्यान करें। परमात्मा के ध्यान से हमारी पाप करने की वृत्तियाँ भस्मीभूत हो जाएँगी, फिर मनुष्य चाहकर भी पाप नहीं कर सकेगा। **भर्ग** वह परमात्मा **भ—भासयते इमान् लोकान्**—सारे संसार को उत्पन्न करता है, इस तथ्य का भान होते ही हमारा नास्तिकपन समाप्त हो जाएगा। वह परमात्मा **र—रञ्जयते इमान् लोकान्**—सारे संसार का पालन करता है, यह भावना आते ही हमारा अभिमान समाप्त हो जाएगा और **ग—गमयति इमान् लोकान्**—वह सारे संसार का संहार करता है, यह भावना मन में आते ही हमारी आसक्ति समाप्त हो जाएगी।

वह परमात्मा 'देव' है, सारे संसार को प्रकाशित करनेवाला है, **'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'**। वह कामना करने योग्य है, चाहने योग है, वह आनन्द का स्रोत है, अतः हम उसका ध्यान, चिन्तन और मनन करें, उसे अपनाएँ, उसे अपने हृदय-मन्दिर में बैठा लें अथवा हम उसके अन्दर बैठ जाएँ।

वह परमात्मा हमारी बुद्धियों को दुर्गुण और दुर्व्यसनों से हटाकर सन्मार्ग में प्रेरित करे, हमारी बुद्धियों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में प्रेरित करे। हमारे मल धुलकर चित्त निर्मल बन जाएँ। हमारे मन के विक्षेपों का प्रक्षेप होकर हमारी चित्तवृत्तियाँ शान्त और समाहित हो जाएँ। हमारी आत्मा के ऊपर पड़े हुए अविद्या-अन्धकार के आवरण का पटाक्षेप होकर हमें परमात्मा के दर्शन हो जाएँ। हम वाणी से मीठा बोलें, शुभ-कर्म करें और हमारी प्राण-शक्ति ओजस्विनी और तेजस्विनी हो।

२. दुष्प्रवृत्तियों को दूर कीजिए

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ —ऋ० ९।६६।१९

अग्ने=हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप हमारे **आयूंषि**=जीवनों को **पवसे**=पवित्र कीजिए **च**=और **नः**=हमें **ऊर्जम्**=बल-पराक्रम, ओजस्विता तथा तेजस्विता, नाना प्रकार के रस और **इषम्**=जीवन को ऊँचा उठाने के लिए प्रेरणाएँ तथा विविध भाँति के मधुर एवं रसीले अन्न **आसुव**=प्रदान कीजिए। **दुत् शुनाम्**=कुत्ते जैसी दुष्ट प्रवृत्तियों [स्वजातिद्रोह, दूसरों की खुशामद, चापलूसी और वान्ताशीपन—क़ै करके चाट लेना] को **आरे बाधस्व**=दूर—बहुत दूर—सात समुद्र पार फेंक दीजिए।

प्रभो! हम अपने जीवनों को सुजीवन बनाना चाहते हैं। हम अपने जीवनों को दिव्य कुन्दन बनाना चाहते हैं। हमारे जीवन शरीर, वाणी और मन के पापों तथा आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—त्रिविध तापों से रहित हों। आपके कृपाकटाक्ष, आपकी दया के बिना यह सम्भव नहीं होगा। देव! दया कीजिए और हमारे जीवनों को निर्मल बना दीजिए। हमारे शरीर नीरोग हों, मन निर्मल हों, आत्मा स्वर्ण की भाँति देदीप्यमान हो।

प्रभो! आप हमें **ऊर्जं आसुव**—बल-पराक्रम, ओजस्विता और तेजस्विता प्रदान कीजिए। आप सद्गुणों के भण्डार हैं, इसलिए हम आपसे ही माँगेंगे। आप हमारे जीवन में बल, ओज, तेज और पराक्रम का आधान कीजिए।

आप रस हैं। हमें भी नाना प्रकार के रस प्रदान कीजिए।

इषं आसुव—जीवन को ऊँचा उठाने के लिए आप हमें दिव्य प्रेरणाएँ दीजिए। भगवन्! आपने अपने वेदरूपी काव्य में दिव्य प्रेरणाएँ दी हुई हैं। आपकी प्रेरणा है—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्। —अथर्व० ८।१।६

हे पौरुष-सम्पन्न मानव! तू ऊपर उठ, उन्नति कर, नीचे मत गिर।

आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतो अयनम्।

—अथर्व० ५।३०।७

ऊपर उठना, आगे बढ़ना प्रत्येक जीवित जीवन का मार्ग है।

परमात्मन्! हमें मधुर और रसीले अन्न प्रदान कीजिए—

अन्नस्य कीलाला उपहूतो गृहेषु नः। —यजुः० ३।४३

हमारे घरों में उत्तम अन्न के भण्डार भरे हुए हों।

हम मीठा बोलें, नम्र बनें और दान करें।

हमारी भद्र भावना हो—

अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन॥

हमारे घरों में अन्न के भण्डार भरे हों, अतिथि हमारे घर पर आते रहें, याचकों की हमारे घर में लाइन लगी रहे, परन्तु हम कभी किसी से न माँगें।

आरे बाधस्व दुच्छुनाम्—कुत्ते-जैसी दुष्प्रवृत्तियों को हमसे दूर भगा दीजिए। कुत्ते की दुष्प्रवृत्तियाँ हैं—स्वजातिद्रोह—कुत्ते का कुत्ता वैरी। कुत्ता दूसरों के आगे पूँछ हिलाता है, पेट दिखाता है, चरण चूमता है। यह वान्ताशी होता है—उलटी करके स्वयं चाट लेता है। प्रभो! कृपा करो हम इन दुष्प्रवृत्तियों से बचें। हम स्वजातिद्रोही न बनें, दूसरों की चापलूसी न करें और वचन देकर अथवा प्रतिज्ञा करके उससे फिरें नहीं।

७. हे प्रभो! मेरी पुकार सुन

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके॥ —ऋ० १।२५।१९

हे **वरुण**=सबको वरण करनेवाले और सबके द्वारा वरणीय प्रभो! **मे**=मेरी **इमम्**=इस **हवम्**=पुकार को, निवेदन को **श्रुधि**=सुनो, **च**=और **अद्य**=आज ही, इसी जीवन में **मृळय**=हमें सुखी कर दो। **अवस्युः**=अपनी सर्वविध रक्षा का इच्छुक मैं **त्वाम्**=तुझ वरणीय परमेश्वर को **आचके**= चाहता हूँ, तेरी स्तुति करता हूँ।

परमात्मा वरणीय है, क्योंकि उसमें आकर्षण है और वह सबका सहारा है। प्रभु में अनुपम आकर्षण है। जैसे नदियाँ समुद्र की ओर खिंची चली जाती हैं, वैसे ही सब जीव प्रभु की ओर खिंचे चले जाते हैं। वह सौन्दर्य का अजस्र स्रोत है, उसे देखने की इच्छा किसकी नहीं होगी? वह सुन्दर ही नहीं शिव भी है, मङ्गलकारी भी है, कल्याणकारी भी है। वह सबका हितसाधक है, वह परम दयालु और शान्ति-दाता है।

प्रत्येक मनुष्य कोई सहारा चाहता है। परमात्मा से बढ़कर कोई सहारा नहीं है—

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥
—कठो० १।२।१७

परमात्मारूपी सहारा सबसे श्रेष्ठ है, सबसे उत्तम है। इस सहारे को जानकर मनुष्य मोक्ष को पा लेता है।

सहारा धन, बल और ज्ञान का होता है।

परमात्मा परमैश्वर्यशाली है। बल में वह अद्वितीय है और ज्ञानियों में वह शिरोमणि है।

परमात्मा भी अपने भक्तों का वरण करता है। जब मनुष्य

परमात्मा को अपनालेता है, उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है, तब परमात्मा भी अपने भक्त को अपना लेता है।

इमं मे हवं श्रुधि-हे प्रभो! मेरी टेर को सुनो—मैं कब से पुकार रहा हूँ। सुनो मेरे निवेदन को। संसार से ऊब गया हूँ। यह नीरस है, इसमें दुःख-ही-दुःख हैं। मैं त्रिविधतापों से सन्तप्त हूँ। मुझे इस अङ्गारों के समान तप्त संसार से उबार कर मोक्ष प्रदान करो। अब तो मोक्ष ही लूँगा और कुछ नहीं चाहिए। वह भी अभी चाहिए, इसी जीवन में ही।

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥

—साम० २४०

हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! मुझे धन नहीं चाहिए। धन आप धन-कामियों को बाँट दें। मैं गो-कामी और अश्व-कामी भी नहीं हूँ। आप गौएँ उन्हें दे दें, जिन्हें गौओं की कामना है और घोड़े उन्हें प्रदान कर दें, जिन्हें घोड़ों की चाहना है। परमपूजनीय धनवाले! मैं तो आपको और केवल आपको चाहता हूँ। अपने सेवक के प्रति तो आप ही आइए, मेरे हृदय-मन्दिर में अपना दर्शन दीजिए और अपनी आनन्दधाराओं की वृष्टि करके मुझे अपने आनन्दामृत से सराबोर कर दीजिए।

अवस्युः-अपनी रक्षा का इच्छुक, आपकी कान्ति और प्राप्ति का इच्छुक, आपके दर्शन से तृप्ति का इच्छुक मैं तुझे और केवल तुझे चाहता हूँ। आपको छोड़कर अन्य किसी वस्तु से मेरी तृप्ति नहीं होगी।

४. हम यज्ञशील बनें

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्त स्थुर्नो अरातयः॥ —अथर्व० १३।१।५९

हे इन्द्र=प्रभो! **वयम्**=हम **पथः**=वैदिक मार्ग से, सुपथ से **मा प्रगाम**=दूर न जाएँ, **सोमिनः**=ऐश्वर्य की इच्छावाले हम **यज्ञात्**=यज्ञों से, शुभ-कर्मों से **मा**=दूर न जाएँ। **अरातयः**= अदानभाव, कंजूसी **नः**=हमारे **अन्तः**=अन्दर **मा स्थुः**=नहीं ठहरे।

प्रभो! हमें वह ज्ञान, शक्ति और विवेक प्रदान कीजिए कि हम वैदिक-पथ से दूर न जाएँ। आपने ही तो उपदेश दिया है—

मैतं पन्थामनु गा भीम एषः। —अथर्व० ८।१।१०

अवैदिक मार्ग पर मत चल, यह भयङ्कर है। यह मार्ग कण्टकाकीर्ण है। इस मार्ग में तम है, अन्धकार है, भय है। वैदिक मार्ग प्रकाश से पूर्ण है, इसमें प्रकाश है, ज्योति है, अभय है।

वैदिक मार्ग क्या है—वेद ईश्वर की वाणी है। ईश्वर एक है, वह सच्चिदानन्दस्वरूप है। वही उपासना करने योग्य है। ईश्वर अवतार नहीं लेता। बिना अवतार लिये सृष्टि का संहार करनेवाले परमेश्वर को क्षुद्र जन्तुओं को मारने के लिए अवतार लेने की क्या आवश्यकता है? मूर्त्तिपूजा अवैदिक है—**न तस्य प्रतिमा अस्ति।** यजुः० ३२।३ उस प्रभु की कोई मूर्त्ति नहीं है। मृतकश्राद्ध अवैदिक है। मृतक के नाम पर ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन पितरों को नहीं पहुँचता। बिना पतेवाला लिफ़ाफ़ा पानेवाले को नहीं पहुँच सकता। वर्ण-व्यवस्था जन्म से नहीं कर्म से है। संक्षेप में यही है वैदिक मार्ग। हम इस वैदिक मार्ग को कभी न त्यागें।

हम अपने जीवन में यज्ञों का अनुष्ठान करें। आपत्तियों और सङ्कटों में भी यज्ञों को न छोड़ें। वेदों में, स्मृतियों में, ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों में पञ्चमहायज्ञों का विधान है। हम जीवन में

पञ्चमहायज्ञों को अपनाएँ, वे पाँच यज्ञ ये हैं—

१. ब्रह्मयज्ञ—प्रतिदिन प्रातः-सायं सन्ध्या करें, वेद का स्वाध्याय करें। २. देवयज्ञ—प्रतिदिन अग्निहोत्र—हवन करें। यज्ञ करने से ऐश्वर्य की वृद्धि होती है, वायु शुद्ध होती है। ३. पितृयज्ञ—माता-पिता का आदर-सत्कार करें। उनकी आज्ञाओं का पालन करें। वृद्धावस्था में उनका भरण-पोषण करें। ४. बलिवैश्वदेवयज्ञ—कौआ, कुत्ता, कीट-पतङ्ग, लूले-लङ्गड़े, पापरोगी—कोढी और चाण्डाल आदि को भी अपने भोजन में से भाग दें। ५. अतिथियज्ञ—जिसके आने-जाने की कोई तिथि न हो, जो वेदादि शास्त्रों का विद्वान् हो, अपने सदुपदेश से लोगों को सन्मार्ग पर चलाता हो, ऐसा अतिथि कभी घर पर आ जाए तो उसका भी भोजन-वस्त्र आदि से सत्कार करें।

हमारे जीवनों में अदानभावना=कंजूसी न हो, हम उदार बनें, दिल खोलकर दान दें।

पानी बाढो नाव में घर में बाढो दाम।
दोऊ हाथ उलीचिए यही सयानो काम॥

जिस घर से दान नहीं दिया जाता 'न तदोको अस्ति' ऋ० १०।११७।४ वह घर-घर नहीं है। दान देने से धन बढ़ता है। किसी ने ठीक ही कहा है—

ऋतु बसन्त याचक भयो हुम दिये सब पात।
ताते नव-पल्लव भयो दिया दूर नहीं जात॥

दान दो, खूब दो, परन्तु पात्र और अपात्र को देख लो। कुपात्रों को दान मत दो।

"परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र और ओषधि, पथ्य, स्थान के अधिकारी सब प्राणिमात्र हो सकते हैं।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

□

५. हम परमात्मा की गोद में बैठें

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ —ऋ० १।१।९

हे अग्ने=ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! सः=वे आप नः=हम लोगों, अपने उपासकों, भक्तों के लिए सूनवे=अपने पुत्र के लिए पिता इव=पिता के समान सूपायनः=सुगमता से प्राप्त होने योग्य भव=होओ और नः=हम लोगों को स्वस्तये=इहलौकिक और पारलौकिक सुख के साथ सचस्व=संयुक्त कीजिए।

प्रभो! आप अग्नि हैं, आग हैं, मुझे भी आग बना दीजिए। मैं भी प्रचण्ड ज्वाला बन जाऊँ, आपके ओज और तेज से ओजस्वी और तेजस्वी होकर चमक उठूँ।

सर्वोन्नति-साधक परमात्मन्! आप हमारे पिता हैं, पालक और रक्षक हैं, जैसे पिता पुत्र के लिए सुगमता से पहुँचने योग्य होता है, उसी प्रकार आप भी हमारे लिए सुगमता से पहुँचने योग्य होओ।

प्रधानमन्त्री से मिलना हो तो उसके पी०ए० से मिलना होगा, उससे समय लेना होगा, परन्तु पुत्र को न पी०ए० से मिलने की आवश्यकता है, न समय लेने की, जब चाहा पिता की गोद में जा बैठा। परमात्मा हमारा पिता है और हम उसके शाश्वत पुत्र। पिता और पुत्र के बीच में किसी एजेण्ट की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा से मिलने के लिए, परमात्मा की गोद में बैठने के लिए न ईसा चाहिए, न मूसा और न मुहम्मद चाहिए।

परमात्मा की गोद में बैठने के लिए, उसे पाने के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि—

तद्दूरे तद्वन्तिके। —यजुः० ४०।५

वह परमात्मा दूर-से-दूर है और निकट-से-निकट। वह अज्ञानियों से दूर है और ज्ञानियों के अत्यन्त निकट। वह हमारे

हृदय-मन्दिर में है—

दिल के आयने में है तस्वीरे यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥

परन्तु परमात्मा की गोद में बैठने के लिए योग्यता चाहिए।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनमाप्नुयात्॥
—कठो० १।२।२४

जो दुश्चरित से दूर नहीं हुआ, जिसकी इन्द्रियाँ चञ्चल हैं, जो समाहित नहीं है, जिसका मन अशान्त है, ऐसा मनुष्य पढ़-सुनकर केवल बुद्धि से उस परमात्मा को नहीं पा सकता।

प्रभु को पाने के लिए जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाओ, मन को निर्मल करो, हृदय का शोधन करो—

सफाई क़ल्ब पैदा कर कि यह आयना है लासानी।
इसी में मुनअक्स ऐ मिह्न अक्से यार होता है॥

योगाभ्यास करो। यम-नियमों का पालन करो। इन्द्रियों को वश में करो, मन को साधो, हृदय को चमकाओ फिर परमात्मा की गोद में बैठकर प्रार्थना करो—

हे प्रभो! हमें स्वस्ति के साथ जोड़ दीजिए। हमें इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति के साथ जोड़ दीजिए।

इहलौकिक उन्नति में छह बातें हैं—रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, औषध, चिकित्सा—इनकी प्राप्ति होने पर लौकिक उन्नति की पूर्णता हो जाती है। इनके अभाव में स्वस्ति-कल्याण सम्भव नहीं है।

पारलौकिक उन्नति है—मोक्ष की प्राप्ति। यह मानव-जीवन का चरम और परम लक्ष्य है। हम ब्रह्मलोक से यात्रा पर संसार में आये हैं। हमारा निवास तो ब्रह्मधाम ही है। हम अपनी जीवन-यात्रा का निर्वाह करते हुए मोक्ष प्राप्त करें—अबाध गति से ब्रह्मधाम में विचरण करें।

□

६. अज्ञानियों के ज्ञान दो

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः॥ —यजुः० २९।३७

हे **मर्याः**=मरणधर्मा मनुष्यो! **अकेतवे**=ज्ञानरहित के लिए **केतुम्**=ज्ञान **कृण्वन्**=प्रदान करते हुए, **अपेशसे**=रूपरहित, सौन्दर्य हीन को **पेशः**=रूप और सौन्दर्य प्रदान करते हुए **उषद्भिः**=अपनी अविद्या, अज्ञान की दाहक शक्तियों के साथ **सम् अजायथ**=संसार में सम्यक् रूप से चमको।

हे मनुष्यो! आप अपनी अविद्या-अज्ञान को भस्मसात् कर देनेवाली शक्तियों के साथ चमको। अपने-आपको आत्मोद्बोधन दो—

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि। —यजुः० १५।५४

हे मेरी आत्माग्ने जाग! सम्यक् जाग्रत् हो जा। अपनी सोई हुई आत्माओं को जगाओ—

उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत। —कठो० १।३।१४

उठो=तैयार हो जाओ, जागो=विवेकी बनो, श्रेष्ठ मनुष्यों के पास पहुँचो और उनसे ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान की ज्योति से चमक उठो। स्वयं ज्ञानी बनकर—

केतुं कृण्वन् अकेतवे—अज्ञानियों को ज्ञान दो। अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करो।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। —मनु० ४।२३३

सारे दानों में ब्रह्मदान=विद्या का दान देना, वेद का पढ़ाना सर्वोत्तम है। वेद का प्रचार और प्रसार करो। घर-घर में जाकर वेद का सन्देश दो।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। —गीता ४।३८

संसार में ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला और कुछ नहीं है।

अज्ञान के कारण मनुष्य अन्धकार में ठोकरें खा रहे हैं। अज्ञान के कारण कोई मूर्त्तियों के आगे मत्था रगड़ रहा है, कोई क़ब्रों पर चद्दर चढ़ा रहा है, कोई तथाकथित तीर्थों में भटक रहा है, कोई ज्योतिषियों को हाथ और कुण्डली दिखा रहा है। कोई पितरों को भोजन पहुँचाने के लिए मूर्ख गंजेड़ी-भंगेड़ी पण्डितों को खिला रहा है। कोई जूए, शराब, बीड़ी-सिगरेट में धन फूँककर अपने अमूल्य मानव-जीवन को नष्ट कर रहा है। विद्या का दान देकर, वेदों का अमृत पिलाकर इन्हें होश में लाओ, इनकी आँखों को खोलो।

पेशो मर्या अपेशसे—हे मनुष्यो ! जो रूपरहित हैं, जो दीन-हीन, दुर्बल हैं, जो शारीरिक, मानसिक, बैद्धिक, आत्मिक दृष्टि से गिरे हुए हैं—उन्हें रूप और सौन्दर्य प्रदान करो।

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उन्हें खान-पान, व्यायाम और ब्रह्मचर्य की शिक्षा दो, क्योंकि—**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।** —कठो० १।२।२३ बलहीन, ब्रह्मचर्यविहीन परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। मानसिक स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए उन्हें—

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। —यजुः० ३४।१

मन को शिवसङ्कल्पमय बनाने का सन्देश दो।

बुद्धि के सौन्दर्य के लिए, बुद्धि की परिपक्वता के लिए उनकी—**धिय आ तनुध्वम्।** —ऋ० १०।१०२।२ बुद्धियों का विस्तार करो।

जिनकी वाणी में माधुर्य है, मन शिवसङ्कल्पयुक्त है, आत्मा निर्मल है—ऐसे व्यक्ति कुरूप होने पर भी सुन्दर हैं। मानवों की शक्ति का विस्तार करके रूपरहितों को सुरूप बना दो, उनकी मन, बुद्धि और आत्माओं को सद्गुणों से समलंकृत कर दो।

७. प्रभु-उपासना

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ —ऋ० १।१।१

मैं **अग्निम्**=ब्रह्म-अग्नि=परमेश्वर की **ईळे**=स्तुति और प्रार्थना करता हूँ। कैसे अग्नि की? **पुरोहितम्**=जो आदर्श है, **यज्ञस्य देवम्**=सृष्टिरूपी यज्ञ का प्रकाशक है, **ऋत्विजम्**= ऋतु-ऋतु में—प्रत्येक ऋतु में उपासना करने योग्य है। **होतारम्**=आवाहन करने योग्य है और **रत्नधातमम्**=स्वर्ण आदि नाना प्रकार की धातुओं का धारण करनेवाला है।

मैं अग्निस्वरूप परमात्मा की स्तुति और प्रार्थना करता हूँ। किस लिए? इसलिए कि परमात्मा अग्नि है, मैं भी अग्नि बन जाऊँ, प्रचण्ड ज्वाला बन जाऊँ, जिस ज्वाला में संसार का अविद्या-अन्धकार, अज्ञान, अन्याय, अभाव, पाप-ताप, पाखण्ड, कुरीतियाँ, मिथ्याविश्वास सभी जलकर भस्मीभूत हो जाएँ।

पुरोहितम्=परमेश्वर पुरोहित है, **पुरा एनं दधति**=उसे सामने रक्खा जाता है। वह हमारे जीवन का आदर्श है। हम भी पुरोहित बनें, अगुआ बनें, आदर्श बनें। आचार में, व्यवहार में, विद्या में, धन में, बल में, बुद्धि में हमारा जीवन अनुकरणीय बने। हमारा जीवन ऐसा आदर्श बने कि—

उत्तम स्वभाव अपना औरों का मन रिझाए।
जो देखते ही कह दे तुम प्यार के लिए हो॥

यज्ञस्य देवम्—परमात्मा सृष्टिरूप-यज्ञ का प्रकाशक है। यह सृष्टि अपने-आप नहीं बनी, इसके बनानेवाला बहुत बड़ा वैज्ञानिक और कलाकार है। उसने सारे संसार को अत्यन्त वैज्ञानिक और चमत्कारपूर्ण रचा है, जिसे देखकर बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी दाँतों तले अङ्गुली दबा लेते हैं। हम भी अपने जीवन-यज्ञों को चमकाएँ। हमारे जीवन-यज्ञ भी चमक उठें। हमारी आत्माग्नि

... हमारे जीवन-यज्ञों में दिव्य गुणों की सुरभि और प्रज्वलित हो, हमारे जीवन-यज्ञों में दिव्य गुणों की सुरभि और सुगन्धि हो, जिससे हम सारे संसार को सुरभित और सुवासित कर सकें।

ऋत्विजम्—आप प्रत्येक ऋतु में उपासनीय हैं। मैं सदा आपकी उपासना करूँ। मैं नास्तिक नहीं, आस्तिक बनूँ। मैं आपकी उपासना में कभी आलस्य-प्रमाद न करूँ। प्रभु-उपासना मेरे जीवन का अभिन्न अङ्ग बने। वेद के शब्दों में हम कह सकें—

उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम्।
नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि॥ —ऋ० १।१।७

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! हम प्रतिदिन प्रातः और सायं नमस्कार की भेंट लेकर आपके समीप उपस्थित होते हैं, आपकी उपासना करते हैं।

होतारम्—आप पुकारने योग्य हैं। आपत्ति और सङ्कटों में लोग आपको ही पुकारते हैं। आपसे प्रेरणा पाकर मैं भी मानव-समाज द्वारा पुकारने योग्य बनूँ। मैं मानव-समाज की ऐसी सेवा करूँ कि लोग आपत्तियों और विपत्तियों में मुझे भी पुकारें। उनकी पुकार पर मैं उनके सङ्कटों को दूर करने में समर्थ हो सकूँ।

रत्नधातमम्—ईश्वर सोना-चाँदी, मूँगा-मोती आदि नाना प्रकार के रत्नों का धारण करनेवाला है। हम भी, हमारे शरीर में उत्पन्न होनेवाले रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, शुक्र, ओज और तेज आदि रत्नों को धारण करें। जैसे आभूषणों को धारण करने से मनुष्य अलंकृत हो जाता है, वैसे ही हम भी ब्रह्मचर्य के तेज से तेजस्वी और ओज से ओजस्वी बन सकें।

८. ज्योति प्रकट करो

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि॥ —ऋ० १।८६।१०

हे **मरुतः**=प्राणसाधक योगियो! **गुह्यम्**=हमारे शरीरान्तर्गत हृदयरूपी गुफा में विद्यमान **तमः**=मल, विक्षेप, आवरणरूपी तम को, अविद्या-अज्ञानरूपी अन्धकार को **गूहत**=नष्ट कर दो। **विश्वम्**=समस्त **अत्रिणम्**=खा जानेवाले काम, क्रोध, लोभ को, तृष्णा को, पाप-वासनाओं को **वियात**=परे खदेड़ दो। **यत्**=जिस **ज्योतिः**=परमात्म-दर्शनरूपी ज्योति को **उश्मसि**=हम सभी मनुष्य चाहते हैं, उस ज्योति को **कर्त**=प्रकट कर दो।

संसार में प्रत्येक मनुष्य ज्योति पाना चाहता है। यह संसार भी एक ज्योति है। यह 'उत्' है, जीवात्मा 'उत्तरम्' उत्तर ज्योति है और परमात्मा 'उत्तम' सर्वोत्कृष्ट ज्योति है। संसार बड़ा चमकीला है। इसकी चमक और दमक निराली है। यह हिरण्यमय पात्र है। यह ज्योति इतनी आकर्षक है कि बड़े-बड़े ज्ञानी, योगी, तपस्वी और संयमी इसकी चकाचौंध में फँस जाते हैं। आत्मारूपी ज्योति इस संसाररूपी ज्योति से श्रेष्ठ है। प्रकृति-नटी बड़ी लुभावनी और आकर्षक है, परन्तु है तो जड़। आत्मारूपी ज्योति चेतन है। इस ज्योति को जानकर मनुष्य संसार से आँखें फेर लेता है। अब वह आत्म-ज्योति में रमण करता है। परमात्मारूपी ज्योति इन दोनों ज्योतियों से बढ़कर है। वह सर्वोत्तम ज्योति है। वह ऐसी मनमोहक ज्योति है कि सहस्रों सूर्यों की प्रभा भी उसके समक्ष फीकी और नीरस है। हम इस ज्योतियों की ज्योति परम ज्योति को चाहते हैं। हे प्राणसाधको! आप हममें इस ज्योति को प्रकट कर दीजिए, क्योंकि इस ज्योति के प्रकट होने पर—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥
—मुण्डको० २।२।८

उस सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म के दर्शन होने पर हृदय की सारी गाँठें खुल जाती हैं, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और कर्म समाप्त हो जाते हैं।

इस ज्योति को पाने के लिए हृदयरूपी गुफा में विद्यमान मल=मन के मैल को, मन के दोषों को, मन के विक्षेप=इधर-उधर भटकने को और आवरण=मन पर पड़े अज्ञानरूपी पर्दे को, अविद्या–अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट कर दो।

अपने एबों[1] पर नज़र[2] कर, अपने दिल को पाक[3] कर।
क्या हुआ गर ख़ल्क़[4] में तू पारसा[5] मशहूर है॥

अपने हृदय को पवित्र बनाओ।

हे साधको! हमें खा जानेवाले वैरियों को परे खदेड़ दो। हमें खा जानेवाले वैरी हैं—काम, क्रोध, लोभ, तृष्णा और वासनाएँ। इन सभी को हमारे जीवन में से बाहर निकाल फेंको।

हमें बोध दो—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥
—गीता १६।२१

आत्मा का नाश करनेवाले नरक के तीन द्वार हैं—काम, क्रोध और लोभ, इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

९. दुर्गुण नाश

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रन्तन्न आ सुव॥ —यजुः० ३०।३

हे **सवितः**=सर्वान्तर्यामिन्, सर्वप्रेरक, समग्र ऐश्वर्ययुक्त! **देव**=सर्वसुखदाता! स्वयंप्रकाश! दिव्य गुण–कर्म–स्वभावयुक्त परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे दुरितानि=दोषों, बुराइयों को **परासुव**=दूर कीजिए और यत्=जो भद्रम्=कल्याणकारक तत्त्वज्ञान है **तत्**=वह नः=हम मोक्षाभिलाषी उपासकों को **आसुव**=प्राप्त कीजिए।

किसी से कुछ माँगनेवाला दो बातें सोचता है। प्रथम, जो वस्तु मैं माँग रहा हूँ वह उसके पास है या नहीं। दूसरी, मुझे माँगने का अधिकार है या नहीं। मन्त्र में आया हुआ देव शब्द उपासक को यह बोध देता है कि परमात्मा देव है। वह निरन्तर दे रहा है। उसके भण्डार में कोई कमी नहीं है। माँगो मिलेगा, खटखटाओ खुलेगा। वह परमेश्वर हमारा शाश्वत पिता है और हम सब उसके अमृत पुत्र और पुत्रियाँ हैं। अयोग्य होने पर भी पुत्र को पिता से माँगने का अधिकार होता है। 'सविता' शब्द बता रहा है कि वह हमारा उत्पादक है, पिता है, अतः हमें माँगने का अधिकार भी प्राप्त है।

उपासक को दोनों बातों का विश्वास हो गया तो उसने भगवान् के समक्ष अपनी प्रार्थना प्रस्तुत की—प्रभो! हमारे दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए। दुर्गुण हैं—काम, क्रोध, लोभ आदि। दुर्व्यसन हैं—शराब पीना, जुआ खेलना, शिकार खेलना आदि और दुःख हैं—आध्यात्मिक—शरीर और मन में आधियाँ और व्याधियाँ, आधिभौतिक—दूसरे प्राणियों से दुःख प्राप्त होना—गाय-भैंस का सींग मार देना, साँप-बिच्छु का डङ्क मार देना, पड़ोसियों से लड़ाई-झगड़ा हो जाना, आधिदैविक दुःख हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी फैल जाना, दुर्भिक्ष पड़ जाना आदि।

दुर्गुण और दोषों के दूर होने पर उपासक कहता है—**यद् भद्रं तन्न आ सुव**—जो भद्र है, कल्याणकारक है, उसे हमें प्राप्त

कराइए। भद्र तो एक ही है और वह है परमेश्वर। भक्त भगवान् से उसे ही प्राप्त करने की प्रार्थना करता है। यहाँ प्रार्थना का क्रम देखिए। पहली प्रार्थना है—प्रभो! हमारे सारे दुर्गुणों, द्वेषों, अभद्र भावनाओं को दूर कर दीजिए। फिर प्रार्थना है—जो भद्र है, उसे प्राप्त कीजिए। जबतक दुरित दूर नहीं होंगे, तब तक भद्र की प्राप्ति नहीं हो सकती।

उस भगवान् को पाने के लिए अपने हृदय-मन्दिरों को पवित्र बनाओ। इसमें से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य के कूड़े-कबाड़े को बाहर निकालो। इस हृदय-मन्दिर को शुद्ध और पवित्र बनाओ तभी तो इसमें प्रभु विराजमान होंगे।

एक व्यक्ति किसी राजा को अपने घर आने का निमन्त्रण देता है। राजा के स्वीकार करने पर वह अपने घर को स्वच्छ बनाता है। कमरे में रङ्ग-रोगन करवाता है। हम तो सम्राटों के सम्राट्—ब्रह्माण्डपति परमेश्वर को बुलाना चाहते हैं। उसे बुलाने के लिए और निरन्तर हृदय-मन्दिर में बैठाने के लिए इसे वासनाओं से शून्य बनाओ, जिससे तुम कह सको—

दिल का मेरा शिवालय सब मन्दिरों से आला।
देखा करूँ मैं इसमें हरदम जमाल तेरा॥

आओ, प्रभु से प्रार्थना करें—

प्रभो! हमारे दुःखजनक पाप-सङ्कल्पों को दूर कीजिए और पुण्य आचरणरूप पुण्य कर्मों को प्राप्त कराइए। हमारी नास्तिकता, अश्रद्धा, भक्तिहीनता को दूर करके आस्तिकता, श्रद्धा, भक्ति-विवेक आदि सद्गुण प्राप्त कराइए। आप हमारे दुर्भाग्य, दरिद्रता आदि को दूर कर प्रशस्त प्रजा, गृह, धन, पशु आदि प्राप्त कराइए। आप हमारे पापरूप असत्य को दूर कर दीजिए और शिष्टों द्वारा आचरणीय सत्य को प्राप्त कराइए। आप हमारे आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों तापों को दूर करके हमें सुख प्रदान कीजिए। आप हमारे निकृष्ट गुण-कर्म-स्वभावों को दूर करके उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव प्रदान कीजिए। ☐

१०. सोम-पान का फल

हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा।
कुवित् सोमस्यापामिति॥ —ऋ० १०।११९।९

हन्त=हे भाई! मैंने **सोमस्य**=सोम का—प्रभु के आनन्दामृत रस का **कुवित्**=खूब, डटकर अपाम्=पान किया है, **इति**=इसलिए मैं शक्ति का पुञ्ज बन गया हूँ। मुझमें इतनी शक्ति आ गई है कि मैं इमाम्=इस पृथिवीम्=पृथिवी को **इह**=यहाँ **वा**=अथवा **इह**=वहाँ वा=जहाँ चाहो वहाँ **निदधान्**=रख दूँ।

मन्त्र में सोमपान की महिमा का वर्णन है। आओ, हम भी सोमपान करें। सोम क्या है? पाश्चात्यों ने वेद को दूषित करने, वैदिक संस्कृति को लाञ्छित करने के लिए सोम का अर्थ शराब कर दिया और घोषणा कर दी कि आर्यलोग शराब पीते थे। वेद में शराब पीने का निषेध है और सोमपान का आदेश है।

सोम क्या है? सोम के अनेक अर्थ हैं। सोम का अर्थ है—चन्द्रमा। सोम का अर्थ है धन। पुत्र को भी सोम कहते हैं। हिमालय में उत्पन्न होनेवाली एक बूटी का नाम भी सोम है। इस बूटी में शुक्लपक्ष में प्रतिदिन एक-एक पत्ता निकलकर पूर्णिमा को पन्द्रह पत्ते हो जाते हैं। कृष्णपक्ष में एक-एक पत्ता गिरने लगता है। अमावास्या को सारे पत्ते गिर जाते हैं। घोट-पीसकर इस लता का पान किया जाए तो यह जनिता मतीनाम्।—[साम० ५२७] बुद्धि को बढ़ाकर तीव्र और सूक्ष्म बना देती है। इसका सेवन शरीर का कायाकल्प कर देता है।

सोम के अन्य भी अनेक अर्थ हैं। इस मन्त्र में सोम का अर्थ है—परमात्मा का आनन्दामृत रस, ब्रह्मानन्द रस। जो इस आनन्द रस का पान कर लेता है, उसमें अद्भुत शक्ति का सञ्चार हो जाता है। इस सोमपान करनेवाले को कोई पराजित और पराभूत नहीं कर सकता। इस सोम का पान करके उपासक इसकी मस्ती में मस्त होकर, इसकी आनन्ददायी तरङ्गों से तरङ्गित होकर झूम-

झूमकर गा उठता है—भाई! आज मेरी शक्ति का क्या पूछना है? आज तो मुझमें वह शक्ति आ गई है कि मैं इस पृथिवी को भी यहाँ से उठाकर वहाँ रख दूँ, वहाँ से उठाकर अन्यत्र रख दूँ, जहाँ कहो वहाँ रख दूँ, क्योंकि मैंने डटकर सोमपान किया है।

क्या सचमुच इस सोमपान से ऐसी शक्ति आती है? क्या किसी ने इस सोम का पान किया था? हाँ, इस सोमपान से ऐसी ही शक्ति आती है। इस सोम का पान किया था महर्षि दयानन्द सरस्वती ने। इस सोम का पान कर वह लङ्गोट-बन्द संन्यासी एक ओर था और डेढ अरब दुनिया एक ओर। वह झुका नहीं, दबा नहीं, उसने संसार की धारा बदल दी। उसने संसार में एक ज्वाला फूँक दी, चहुँ ओर एक क्रान्ति मचा दी। लोगों के हृदय और मस्तिष्क बदल गये।

पं० बुद्धदेवजी ने लिखा—

हिमगिरि से गङ्गा बहती है,
सब दुनिया यूँ ही कहती है।
आज हरिद्वार में किसी ने धारा बदल दई॥

इस सोम का पान किया था स्वामी श्रद्धानन्द ने, जिन्होंने सङ्गी और साथी न मिलने पर भी, इतना ही नहीं विरोध होने पर भी अपना सर्वस्व और जान की बाज़ी लगाकर गुरुकुल की स्थापना कर दी। इस सोम का पान किया था आर्यपथिक पं० लेखरामजी ने जो अपने रुग्ण पुत्र को छोड़कर वैदिक धर्म के प्रचार के लिए निकल गये। इस सोम का पान किया था पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ने, जिन्होंने विरोध होने पर भी डी०ए०वी० विद्यालय को सींचने के लिए अपना सर्वस्व वार दिया।

आओ, हम भी इस सोम का पान करें और कह उठें—

अपा॒म् सोम॑म॒मृता॑ अभूम। —ऋ० ८।४८।३

हमने भी सोम का पान किया है और अमर हो गये हैं। अब धूर्तों की धूर्ति हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। □

११. प्रभु-उपासना कहाँ?

उपह्वरे गिरीणाᳪ सङ्गमे च नदीनाम्।
धिया विप्रोऽअजायत॥ —यजुः० २६। १५

गिरीणाम्=पर्वतों की **उपह्वरे**=कन्द्राओं में **च**=और **नदीनाम्**=नदियों के **सङ्गमे**=सङ्गम पर **धिया**=धारणाओं से, ध्यान लगाने से मनुष्य **विप्रः**=ज्ञानी, मेधावी, योगी **अजायत**=बन जाता है।

ध्यान कहाँ लगाएँ, योगाभ्यास कहाँ करें? योगाभ्यास के लिए शान्त, एकान्त स्थान चाहिए। महर्षि गोतम कहते हैं—

अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः।

—न्याय० ४। २। ४२

योगशास्त्र में आचार्यों ने वन, गुहा, समुद्र तथा नदी के तट आदि एकान्त स्थानों में बैठकर योगाभ्यास करने का उपदेश दिया है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् [२। १०] में कहा है—

समे शुचौ शर्करावह्निबालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयेण प्रयोजयेत्॥

वायुरहित पर्वत की गुफा आदि एकान्त-शान्त स्थान पर, जहाँ पृथिवीतल सम है, जहाँ न बालू है, न पत्थर हैं, जहाँ जलाशयों का शब्द ध्यान में बाधा नहीं डालता, जो मन के अनुकूल और आँखों को सुख देनेवाले हैं, योगाभ्यास करना चाहिए।

ऐसे स्थान हज़ारों में से एक सौभाग्यशाली मनुष्य को मिल सकते हैं, तब क्या उपासना न करें, ध्यान-सन्ध्या और योगाभ्यास को छोड़ दें? नहीं, आपको बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। आशा और मनसा की लताओं को, सङ्कल्प और विकल्प के झाड़-झङ्काड़ों को उखाड़कर मन के वन में बैठो।

मनुष्य-शरीर में हड्डियाँ ही पर्वत हैं। अपने शरीर का अथवा हॉस्पिटल में किसी मानव ढाँचे का निरीक्षण कीजिए। दोनों स्तनोंवाला स्थान उभरा हुआ दिखाई देता है। ये ही गिरि अथवा पर्वत हैं। इन दोनों के मध्य में अङ्गुष्ठमात्र प्रदेश गुफा है। इसी में ध्यान लगाइए। महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदयदेश है, जिसको ब्रह्मपुर, अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकारवत् वेश्म, अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है, उसके बीच में सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के भीतर खोज करने से मिल जाता है, दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है। —ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपा०

मनुष्य-शरीर में बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस सहस्र, दो सौ एक नाड़ियाँ हैं। इनमें चौदह प्रमुख हैं; उनमें भी इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मूलाधार से आरम्भ होकर ये दोनों भोहों के मध्य में आज्ञाचक्र में मिलती हैं। यही त्रिवेणी का सङ्गम है। यही ध्यान-धारणाओं का केन्द्र है।

बाहर भटकना बन्द कीजिए। हरद्वार, बद्रीनाथ, कैलास और मानसरोवर आदि तथाकथित तीर्थों में प्रभु के दर्शन नहीं होंगे। पत्थर की मूर्त्तियों में भी उस प्रियतम के दर्शन नहीं होंगे। ये मन्दिर तो मनुष्यों के बनाये हुए हैं। हमारे शरीररूपी मन्दिर प्रभु-निर्मित हैं। **देहो देवालयः प्रोक्तः।** हमारा शरीर ही दिव्य मन्दिर है। उस प्रभु को यहीं खोजो। उसके दर्शन इसी नारायण की नगरी, ब्रह्मपुर, सप्त ऋषियों के आश्रम में होंगे।

१२. उपासना-योग

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि॥ —यजु० २३।५

योगी और विद्वान् लोग **परितस्थुषः**=सब जगत् और सब मनुष्यों के हृदय में व्याप्त ईश्वर को **युञ्जन्ति**=उपासना-योग से अपनी आत्मा के साथ जोड़ते हैं। कैसा है वह परमेश्वर? **चरन्तम्**=सर्वज्ञ—सबको जाननेवाला **अरुषम्**= हिंसादि दोषरहित, दया का सागर **ब्रध्नम्**=सबसे बड़ा और सबके आनन्द को बढ़ानेवाला है, इसीलिए **रोचनाः**=उपासकों के आत्मा अविद्यादि सब दोषों के अन्धकार से छूटकर **दिवि**=आत्माओं को प्रकाशित करनेवाले परमेश्वर में प्रकाशमय होकर **रोचन्ते**=प्रकाशित रहते हैं।

योगी लोग सारे संसार में और सब मनुष्यों के हृदय में व्याप्त परमेश्वर को उपासना-योग से अपनी आत्मा के साथ जोड़ते हैं। उपासना-योग क्या है? महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाङ्ग योग द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति का वर्णन किया है। वह अष्टाङ्ग योग है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि। यम हैं—निर्वैरता, सत्याचरण, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य का पालन और पदार्थों का अतिमात्रा में संग्रह न करना तथा अभिमानरहित होना। नियम हैं—अन्दर और बाहर की पवित्रता, सन्तोष—पूर्ण पुरुषार्थ करके फल में सन्तुष्ट रहना, तपस्वी होना, वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करना तथा ईश्वर के परम पवित्र ओम् नाम का स्मरण करना और अपने-आपको परमात्मा के प्रति समर्पित कर देना। इस अष्टाङ्ग से उपासक अपने आत्मा को परमात्मा में जोड़ने का प्रयत्न करे। मूर्तिपूजा, व्यर्थ तथाकथित तीर्थों में भ्रमण और आजकल मेंढकों की भाँति उत्पन्न हो रहे गुरुओं की पूजा से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जिस परमेश्वर के साथ मेल करके उसे पाना चाहते हैं, वह परमेश्वर कैसा है?

१. **चरन्तम्**—वह परमेश्वर सर्वज्ञ है, सब-कुछ जानता है—**विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्**—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर!

आप मनुष्यों के सब कर्मों को जानते हैं। उससे जीव का कोई भी कर्म, कोई भी चेष्टा छुपी नहीं है। उसने तो मनुष्यों की पलकें तक गिनी हुई हैं। दो मनुष्य एकान्त में बैठकर जो विचार करते हैं, परमेश्वर वरुणरूप में तीसरा होकर उसे भी जानता है।

२. **अरुषम्**—वह हिंसा आदि दोषों से रहित है। वह परम दयालु है, दया का सागर है। हम एक दाना बोते हैं और बदले में परमात्मा सैकड़ों, सहस्रों और लाखों देता है, यह उसकी दया है। प्रत्येक प्राणी—लूला-लङ्गड़ा, यहाँ तक की कोढ़ी भी मरना नहीं चाहता। सूअर भी अपनी योनि में प्रसन्न है, यह परमात्मा की दया है।

३. **ब्रध्नम्**—वह परमेश्वर सबसे बड़ा है—**सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।**[१] वह हज़ारों शिरवाला, हज़ारों आँखोंवाला और सहस्रों पैरोंवाला है। वह सूर्य से लाखों गुणा बड़ा है। संसार में उससे बड़ा कोई नहीं है। बड़े की तो बात ही क्या—**न क्येवं यथा त्वम्**[२]—कोई परमात्मा जैसा भी नहीं है। वह सबके आनन्द को बढ़ानेवाला है। वह आनन्द का सरोवर है। उसमें डुबकी लगानेवाला भी आनन्दमय हो जाता है। वह **रसेन तृप्तो न कुतश्च नोनः।**[३] रस से, आनन्द से परिपूर्ण है, इसलिए वह अपने उपासकों को भी आनन्द से सराबोर कर देता है।

उस परमात्मा के साथ मेल करने का फल क्या होता है? परमात्मा की उपासना से मल, विक्षेप और आवरण का पटाक्षेप हो जाता है। जीवात्मा का अविद्यान्धकार छूट जाता है। आत्मा का बल इतना बढ़ जाता है कि वह पर्वत के समान दुःख आने पर भी घबराता नहीं, सब-कुछ को हँसते और मुस्कराते हुए सहन कर लेता है।

परमात्मा उपासकों की आत्माओं को प्रकाश से आपूर कर देता है—भर देता है। परमात्मा की ज्योति से ज्योतिर्मान होकर उपासक भी चमक उठते हैं, उनके जीवन में एक विशेष दीप्ति, आभा, चमक आ जाती है। उनका मुखमण्डल **ब्रह्मइव भाति**, तेज से देदीप्यमान हो उठता है। □

---

१. यजुः० ३१।१; २. साम० २०३; ३. अथर्व० १०।८।४४

१३. उद्योगी परमानन्द पाते हैं

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ —सा० ७२१

देवाः=दिव्य गुण, विद्वान् लोग **सुन्वन्तम्**=सोम निचोड़नेवाले, यज्ञ करनेवाले, निरन्तर कर्मशील को **इच्छन्ति**=चाहते हैं, वे **स्वप्नाय**=सोनेवाले को, हवाई क़िले बनानेवाले को **न इच्छन्ति**= नहीं चाहते **अतन्द्राः**=तन्द्रारहित, उद्योगी, पुरुषार्थी **प्रमादम्**= प्रकृष्ट आनन्द को, मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

विद्वान् कर्मशील से प्रेम करते हैं। जो आलसी और प्रमादी हैं, उन्हें कोई नहीं चाहता। घर में माता-पिता, बड़े-बूढ़े—सभी काम करनेवाले से प्रेम करते हैं। कहावत है कि काम प्यारा होता है, चाम प्यारा नहीं होता, अतः कर्मशील बनो।

असुन्वन्तं समं जहि। —ऋ० १।१७६।४

यज्ञ न करनेवाले, परोपकार न करनेवाले को मार डालो।

देवाः=सद्‌गुण भी कर्मशील का ही वरण करते हैं। वेद में कहा है—**यो जागार तमृचः कामयन्ते**[१]। जो जागता है, उसकी सर्वत्र स्तुति होती है। धन-सम्पत्ति, दया, दाक्षिण्य, सरलता, सज्जनता, नम्रता आदि सद्‌गुण कर्मशील का ही वरण करते हैं।

विद्वान् लोग सोनेवाले को, शेखचिल्ली की भाँति व्यर्थ के हवाई-महल बनानेवाले को नहीं चाहते। जो जागत है, सो पावत है, जो सोवत है, सो खोवत है। सोने में है मुसाफ़िर को ख़तरा, अतः जागरूक बनो। केवल मन के मोदक मत फोड़ते रहो। व्यर्थ के हवाई किले मत बनाओ। निद्रा त्यागो—

---

१. ऋक्० ५।४४।१४

कलि शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।
चरैवेति, चरैवेति॥ —ऐतरेय ब्राह्मण

सोना कलियुग है, जम्हाई लेना द्वापर है, उठ खड़ा होना त्रेता है और कर्म में लग जाना सत्ययुग है।

जो सोया रहता है, उसका भाग्य भी सोया रहता है, जो उठ खड़ा होता है, उसका भाग्य भी जाग जाता है।

जो आलसी नहीं हैं, वरन् पुरुषार्थी हैं, उद्योगी हैं, वे संसार में सर्वविध उन्नति करते हैं। वे प्रकृष्ट आनन्द=मोक्ष-प्राप्त करते हैं।

यदि कुछ पाना है, संसार का आनन्द-उपभोग करना है, मोक्ष-प्राप्ति की कामना है, तो उद्योगी बनो, अखण्ड पुरुषार्थ करो। पुरुषार्थ की प्रेरणा सूर्य से लो—

पश्य सूर्यस्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्।

सूर्य का परिश्रम देखो, वह चलते हुए कभी थकता नहीं है।

आप भी अथक परिश्रमी बनो, क्योंकि **उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः**—धन-सम्पत्ति उद्योगी का ही वरण करती है।

इस जीवन का उद्देश्य नहीं है, विश्रान्त भवन में रुक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक, जिसका आगे अन्त नहीं॥

अतः आलस्य और प्रमाद को त्यागो, पुरुषार्थी बनो, फिर लोक और परलोक दोनों तुम्हारे हाथों में होंगे। जीते हुए इस लोक का आनन्द लूटो और मरने पर मोक्ष प्राप्त करो।

❑

१४. प्रभु को कौन पाते हैं?

तद्विप्रासो विपन्युवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत् परमं पदम्॥ —साम० १६७३

विष्णोः=सर्वव्यापक परमात्मा का **यत्**=जो **परमं पदम्**=सर्वोत्कृष्ट पद है, मोक्षधाम है, **तत्**=उसको **विप्रासः**=ज्ञानी, **विपन्यवः**=भक्त और **जागृवांसः**=जागरूक कर्मयोगी **समिन्धते**=अपने हृदय में प्रदीप्त करते हैं।

परमात्मा के परमपद में, मोक्ष में अमृत का स्रोत है। सचमुच—**रसो वै सः**—वह रसमय है, आनन्दमय है।

रसं ह्येवा लब्ध्वानन्दी भवति। —तैत्तिरीय आ० २।७

उस रसरूप परमात्मा को पाकर जीव भी आनन्दमय बन जाता है। वेदान्तदर्शन में भी कहा है—

आनन्दमयोऽभ्यासात्॥ —वेदा० १।१।१२

योग का अभ्यास करने से, अपने-आपको परमात्मा के साथ जोड़ने से, बार-बार परमात्मा का चिन्तन-मनन करने से उपासक भी आनन्दी बन जाता है।

परन्तु परमात्मा के उस परमपद को पाते कौन हैं?

१. **विप्रासः**=जो ज्ञानी है। उस परमात्मा को पाने के लिए ज्ञानी बनो। **ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।**

ज्ञान के बिना मोक्ष की, परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती।

परमात्मा को पाना है तो अधिक-से-अधिक ज्ञान का संग्रह करो। इसके लिए स्वाध्याय का व्रत लो। वेद, दर्शन, उपनिषदों का अध्ययन करो, मोक्षमार्ग की ओर ले-जानेवाले ग्रन्थों को पढ़ो।

२. **विपन्यवः**=स्तुतिशील भक्त परमात्मा को पाते हैं। प्रकृति

से मुख मोड़कर परमात्मा के भक्त बनो। परमात्मा की स्तुति करो। प्रेम में भरकर उसके गीत गाओ। अपने हृदय का सम्पूर्ण प्रेम उँडेलकर उसके स्तोत्रों का पाठ करो। उसकी भक्ति में ऐसे तल्लीन हो जाओ की आँखों से प्रेम के अश्रु छलकने लगें, कण्ठ गद्गद हो जाए। शरीर में रोमाञ्च हो जाए। प्रभु की भक्ति में ऐसे मग्न हो जाओ कि चहुँ-ओर उस प्यारे प्रभु की छटा दृष्टिगोचर होने लगे।

३. **जागृवांसः**=जो जागरूक हैं, कर्मयोगी हैं, वे प्रभु को पाते हैं, प्रभु को पाना है तो सदा जागरूक रहो। जागृति क्या है? क्या बट्टा-सी आँखें खुली हुई हों, इसका नाम जागृति है? नहीं, कदापि नहीं। जागृति का अर्थ है—सद्-असद् विवेकी बनो। जड़ और चेतन में, धर्म और अधर्म में, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य में, पाप और पुण्य में विवेक करना सीखो। सांसारिक विषयों से मुख मोड़कर परमात्मा की प्राप्ति में मन को लगाओ। उपनिषद् के शब्दों में—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेधव्यो शरवत्तन्मयो भवेत्॥

—मुण्ड० २।२।४

ओ३म् को धनुष बना लो, आत्मा को तीर बना लो और ब्रह्म को अपने जीवन का लक्ष्य बना लो। आलस्य और प्रमाद को छोड़कर—अत्यन्त सावधान होकर वेधो। जैसे शर—तीर निशाने पर जा बैठता है, ऐंसे ही परमात्मा में तन्मय हो जाओ।

आओ! हम ज्ञानी बनकर प्रभु के स्वरूप को जाने, फिर उसे अपने हृदय में प्रकट करें और उसके आनन्दामृत का पान करें।

□

१५. गवेषणा के लिए दान दो

कुवित्सु नो गविष्टयेऽ ग्ने संवेषिषो रयिम्।
उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ —साम० १६४९

हे **अग्ने**=सर्वोन्नति साधक, प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! **गविष्टये**=गवेषणा Research के लिए **नः**=हमें **कुवित्**=खूब, बहुत अधिक **रयिम्**=धन **सु**=उत्तम प्रकार से **संवेषिषः**=प्राप्त कराइए। **उरुकृत्**=विशाल धनों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **नः**=हमें **उरु**=विशाल हृदयवाला, उदार **कृधि**=बना दीजिए।

प्रभो! आप अग्रणी हैं, सबको आगे ले-चलनेवाले हैं, सबकी उन्नति-साधक हैं। हम ज्ञान-यज्ञ रचाना चाहते हैं, विविध-क्षेत्रों में गवेषणा करना चाहते हैं। इस गवेषणा= Research के लिए धन चाहिए और धन भी थोड़ा नहीं बहुत चाहिए, अतः आप हमें प्रभूत धन प्रदान कीजिए। आप हमारे कोशों को धन से भरपूर कर दीजिए।

मनुष्य धन कमाता है, परन्तु प्रायः उसे भोग-विलास में व्यय कर देता है। यह अन्त में मनुष्य के दुःख का कारण बनता है। **भोगे रोगभयम्**। भोगों का परिणाम रोग है। रोग मनुष्य को जीर्ण-शीर्ण कर देते हैं।

अनेक बार मनुष्य धन कमाता है, परन्तु उसे पापों में—जुए में, सट्टे में, शराब पीने में, मांस-भक्षण में, दुराचार में नष्ट कर डालता है। मनुष्य की बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है और वह सारे धन को लुटा बैठता है।

कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो धन को भोगों और पापों में तो व्यय नहीं करते, परन्तु वित्तमोह के कारण उसे जुटाते जाते हैं, व्यय नहीं करते। मनुष्य कृपण=कंजूस बन जाता है। यह भी तो धन का दुरुपयोग ही है।

भक्त प्रार्थना करता है—हे प्रभूत धन प्राप्त करानेवाले प्रभो! हमें विशाल हृदयवाला बनाइए, हमें उदार बनाइए, दानशील बनाइए, जिससे हम गवेषणा के लिए, वेद और योग प्रचार के

लिए दिल खोलकर दान करें। हम कैसे उदार बनें, यह एक दृष्टान्त से समझिए—

एक अति सम्पन्न परिवार में एक वधू आई। प्रथम दिन वधू ने अपने श्वसुर के लिए भोजन परोसा। दैवयोग से दाल में मक्खी गिर गई। वधू अतिशीघ्र दाल की दूसरी कटोरी लेकर आई। वधू ने देखा कि श्वसुर ने मक्खी के पङ्ख निचोड़ लिये, मक्खी को फेंक दिया और उस मक्खी गिरी दाल को खाने लगे।

वधू पर इस घटना का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। उसने सोचा कि यहाँ तो मैं बीमार हो गई तो कोई पूछनेवाला भी नहीं होगा। इसी चिन्ता में उसने खाट पकड़ ली, सिर में भयङ्कर दर्द रहने लगा। कुछ ही दिनों में दशा बिगड़ गई। एक दिन श्वसुर पास आये और बोले—बेटी! मैं तो आपको बड़े उत्साह से लाया था कि आप इस घर को सँभालोगी, परन्तु आप तो भयङ्कररूप से रोगी हो गई। आपको यह सिर-दर्द कभी पहले भी हुआ था? वधू बोली—एक बार पिताजी के घर पर भी हुआ था। उन्होंने पचास ग्राम मोती पिसवाकर उनका लेप लगवाया था। उससे मैं स्वस्थ हो गई। श्वसुर ने वैद्यजी को बुलाया और कहा—२०० ग्राम मोती लेकर पिसवाओ, जिससे बेटी के सिर पर लेप कराया जा सके।

जब वैद्यजी को मोती दीये जाने लगे तो वधू एकदम खड़ी हो गई और बोली—पिताजी! मेरे सिर का दर्द तो ठीक हो गया, परन्तु मुझे एक बात समझ में नहीं आई। उस दिन जब दाल में मक्खी गिर गई थी, तब तो आपने मक्खी के पर निचोड़ लिये थे और आज माथे पर लेप करने के लिए आप २०० ग्राम मोती देने के लिए तैय्यार हो गये।

श्वसुर बोले—"धन कमाया तो ऐसे ही जाता है, परन्तु जब वेद-माता के सिर में दर्द हो, संस्कृति पर प्रहार हो, धर्म पर सङ्कट हो तो दिल खोलकर धन देना चाहिए।"

हम भी इसी आदर्श को सामने रखकर वैदिक गवेषणा के लिए दिल खोलकर दान दें। □

१६. वेद पढ़ो और पढ़ाओ

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्यइव ततनः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम्॥ —ऋ० १।३८।१४

श्लोकम्=वेद-मन्त्रों को **आस्ये**=अपने मुख में **मिमीहि**=भर लो, फिर **पर्जन्यः इव**=बादल की भाँति उन्हें **ततनः**=फैला दो, उपदेश कर दो। **गायत्रम्**=वेद का गान करनेवाले, वेद का स्वाध्याय करनेवाले की रक्षा करनेवाले और **उक्थ्यम्**= अत्यन्त प्रशंसनीय वेद-मन्त्रों का **गाय**=स्वयं गान करो और दूसरों को भी उनका गान करने के लिए प्रेरित करो।

मन्त्र का सन्देश है कि वेद का स्वाध्याय करो और वेद-मन्त्रों को कण्ठस्थ करो, वेद-मन्त्रों से अपना मुँह भर लो। प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम वेद क्यों पढ़ें? हम अपने कर्त्तव्य कर्मों को जानने के लिए, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, सत्य और असत्य में विवेक करने के लिए वेद पढ़ें। हमारा अपने प्रति क्या कर्त्तव्य है, हमारा दूसरों के प्रति—परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रति क्या कर्त्तव्य है, परमात्मा के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है—इन सब बातों को जानने के लिए हम वेद पढ़ें।

हमें अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नति के सन्देश वेद से ही प्राप्त होंगे। जैसे—**अश्मा भवतु ते तनूः**। [अथर्व० १।१३।४ हमारे शरीर पत्थर के समान दृढ़ हों। **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**। [यजुः० ३४।१] हमारे मन शिवसङ्कल्प करनेवाले हों। **धियो यो नः प्रचोदयात्** [यजुः० ३६।३] हमारी बुद्धि सन्मार्ग में चले इत्यादि।

हमें अपने पड़ौसियों से कैसा व्यवहार करना चाहिए। परिवार के प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं, राष्ट्र के प्रति और विश्व के प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं—इन सभी का ज्ञान वेदाध्ययन से ही प्राप्त होगा।

परमात्मा का स्वरूप कैसा है ? उसके गुण-कर्म और स्वभाव क्या हैं ? जीवात्मा का परमात्मा के साथ क्या सम्बन्ध है ? उसकी उपासना कहाँ करें, कैसे करें, क्यों करें—इन सब बातों का उत्तर भी वेद के अध्ययन से ही प्राप्त होगा।

परमात्मा के आदेश, उपदेश और सन्देशों को जानने के लिए हम वेद का अध्ययन करें और वेद-मन्त्रों को कण्ठस्थ करें, वेद-मन्त्रों से अपना मुँह भर लें।

तत्पश्चात् वेद-मन्त्रों का उपदेश करें। वेद का प्रचार और प्रसार करें। घर-घर, ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, देश-देशान्तर, द्वीप-द्वीपान्तर में वैदिक-धर्म की दुन्दुभिः बजा दें, वेद की पताका सर्वत्र फहरा दें।

जो वेद का स्वाध्याय करता है, वेद उनकी रक्षा करता है। वेद के सन्देश और उपदेश, यथा—**अक्षैर्मा दीव्यः**—जुआ मत खेलो। **वि न इन्द्र मृधो जहि**—हे आत्मन्! तू काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं को कुचल डाल, मनुष्य को पाप के गर्त में गिरने से बचाते हैं, इसलिए इन्हें '**गायत्रम्**' कहा है।

ये मन्त्र '**उक्थ्यम्**' हैं। वेद परमात्मा द्वारा सृष्टि के आरम्भ में मानवमात्र के लिए प्रदान किये गये थे। संसार में वेद से बढ़कर और कोई ज्ञान नहीं है। **नहि वेदात् परं शास्त्रम्।** सारे ग्रन्थ एक ओर और वेद एक ओर, फिर भी वेद का पड़ला भारी है। वेद सुप्रीमकोर्ट है। वेद स्वतःप्रमाण है, शेष सारे ग्रन्थ प्रतःप्रमाण हैं, इसलिए वेद-मन्त्र '**उक्थ्यम्**' हैं, अत्यन्त प्रशंसनीय हैं।

आओ! हम ऐसे वेद-मन्त्रों का गान करें, हम स्वयं इन्हें गाएँ, दूसरों से गवाएँ। हम स्वयं वेद का अध्ययन करें, दूसरों को इनका अध्ययन करने और इनका प्रचार-प्रसार करने के लिए प्रेरित करें।

१७. प्रभो! हमपर सुख की वृष्टि करो।

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः॥ —यजुः० ३६।१२

देवीः=प्रकाशकों का प्रकाशक—सर्वप्रकाशक **आपः**=सर्वव्यापक परमेश्वर **अभिष्टये**=मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति के लिए और **पीतये**=परमानन्द—मोक्ष-प्राप्ति के लिए **नः**=हमारे लिए **शम् भवन्तु**=कल्याणकारक हो तथा **नः**=हम सबपर **शं योः**=सुख की **अभिस्रवन्तु**=चारों ओर से वृष्टि करे।

परमात्मा 'आपः' है, सर्वव्यापक है। वह अणु-अणु और कण-कण में प्रविष्ट है। **स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु**[1]—वह वस्त्र में ताने और बाने के समान सब प्रजाओं में ओत-प्रोत है। भक्त ऐसे भगवान् से प्रार्थना कर रहा है जो सर्वत्र विद्यमान है। दिल्ली में रहनेवाला परमेश्वर दिल्ली में रक्षा कर सकता है और वह भी एक सीमित स्थान पर। इसी प्रकार कैलास और क्षीरसागर में रहनेवाला परमेश्वर सर्वत्र रक्षा नहीं कर सकता। चौथे और सातवें आसमान पर रहनेवाले के लिए तो और भी कठिन कार्य है। जो सर्वव्यापक है, वह सब स्थानों पर रक्षा कर सकता है।

वह परमात्मा 'देवी' है। वह प्रकाशकों का प्रकाशक है। सूर्य प्रकाशक है, चन्द्रमा प्रकाशक है। अग्नि और विद्युत् प्रकाशक हैं, परन्तु इनमें प्रकाश कहाँ से आया? यदि परमात्मा इनमें से अपना प्रकाश खेंच ले तो ये सब मिट्टी के ढेले हैं। **तस्य भासा सर्वमिदं विभाति**[2]—उसकी ज्योति से, प्रकाश से ये सारे पिण्ड द्योतित और प्रकाशमान् हो रहे हैं। ऐसा परमेश्वर—

अभिष्टये—मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति के लिए हमारे लिए कल्याणकारी हो। प्रत्येक व्यक्ति का मनोवाञ्छित फल भिन्न-भिन्न है। किसी को धन चाहिए, किसी को यश चाहिए, किसी को विद्या चाहिए, किसी को पुत्र चाहिए, तो किसी को पुत्री।

---

१. यजुः० ३२।८ २. कठो० २।२।१५

संक्षेप में—**पुलुकामो हि मर्त्यः** ।[१] मनुष्य नाना कामनाओंवाला है।

पीतये—परमानन्द—मोक्ष की प्राप्ति के लिए भी वह परमेश्वर हमारे लिए कल्याणकारी हो। हमारे जीवन का चरम और परम लक्ष्य—मोक्ष भी उसी की कृपा से प्राप्त हो सकता है।

भक्त ने मन्त्र में अभिष्टि और प्रीति, भोग और मोक्ष, लौकिक उन्नति और पारलौकिक ऐश्वर्य, अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की कामना की है। वैदिक-धर्म एकाङ्गी नहीं सर्वाङ्गी है। केवल भोगों में रम जाना, खाओ, पीओ, करो आनन्द को जीवन का उद्देश्य बनाकर मोक्ष को भूल जाना भी ठीक नहीं और संसार को त्यागकर केवल मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करना भी अनुचित है। ठीक यही है—**भोगयोगपरो भव**, अर्थात् संसार के भोगों को भी भोगो और योगी भी बनो।

'अभिष्टि' शब्द में एक और भी सौन्दर्य है। जिस वस्तु की हमें कामना है, उसकी प्राप्ति में किसी दूसरे को हानि तो नहीं पहुँच रही है। यदि कोई व्यक्ति किसी को लूट-खसोटकर धन कमाता है तो वह इष्टि हो सकती है, अभिष्टि नहीं।

वह आनन्द-सिन्धु, रस से परिपूर्ण परमेश्वर हमपर सब ओर से सुखों की वृष्टि करे। वह परमात्मा हमारे रोगों को नष्ट और भयों को दूर करे। हम जो कार्य करने लगे हैं उसमें विघ्न-बाधाएँ न आएँ। परमात्मा अपना वरदहस्त सदा हमारे ऊपर रक्खे, जिससे हमारा कल्याण-ही-कल्याण हो। परमात्मा की सहायता और कृपा हमें सदा मिलती रहे।

इस मन्त्र का आचमन में विनियोग है, अतः इसका जलपरक अर्थ भी होगा—

ये दिव्य जलधाराएँ बाह्य प्रयोग के लिए और अन्दर पान की जाकर हमारे लिए कल्याणकारक हों। ये दोनों ओर से प्रयोग में आकर हमारे शारीरिक स्वास्थ्य का कारण बनें।

---

१. ऋ० १।१७।९५

१८. सबके कल्याण की कामना

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ —साम० ६ ५३

हे प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमे **पवस्व**=पवित्र कीजिए। **शम् गवे**=हमारी गौओं के लिए कल्याण हो। **शं जनाय**=हमारे जनों=मनुष्यों के लिए सुख-शान्ति और आरोग्य हो। **शम् अर्वते**=हमारे घोड़ों का कल्याण हो। **राजन्**=हे शोभनतम प्रभो! **ओषधीभ्यः**=ओषधियों से **शम्**=हमें शान्ति प्राप्त हो।

हे प्रभो! आप हमारे जीवनों को पवित्र कीजिए। जीवन पवित्र बनता है सात्त्विक आहार से। **आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः**=भोजन के शुद्ध, पवित्र और सात्त्विक होने पर हमारे सत्त्व—रस, रक्त, मांस, मेद्य, मज्जा, अस्थि, शुक्र—सब धातुएँ पवित्र होंगी और **सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः**=सत्त्व के शुद्ध होने पर बुद्धि ठीक रहती है। पवित्र जीवन के लिए हम अण्डे, मांस, मछली, शराब, भाँग, चरस, अफीम आदि अभक्ष्य और मादक पदार्थों का सेवन न करें। शुद्ध, सात्त्विक, पौष्टिक आहार लें। स्मरण रक्खो—मांस खानेवाला व्यक्ति तीन काल में भी योगी नहीं बन सकता। मांस-भक्षक का मन निर्मल नहीं हो सकता—

जे रत्त लागे कापड़ा जामा होय पलीत।
जे रत्त खाँदे नानका तिनके कैसे निर्मल चीत॥

हमारे जीवन पवित्र होंगे तो हम प्रार्थना कर सकेंगे—**शं गवे**—हमारी गौओं के लिए कल्याण हो। वेद में गौ की बड़ी महीमा गाई गई है। यजुर्वेद में कहा है—**गोस्तु मात्रा न विद्यते।**[1] संसार में गौ की तुलना नहीं की जा सकती। गाय के दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ में तो अद्भुत गुण हैं ही—इसके गोबर, मूत्र,

---

१. यजुः० २३।४८

हल्दी आदि में भी विलक्षण गुण हैं। इसीलिए वेद में कहा है—गावो भगो गाव इन्द्रो मे।[१] गौएँ मेरा ऐश्वर्य हैं।

शं जनाय—हमारे मनुष्यों के लिए सुख-शान्ति और नीरोगता हो। मनुष्य रोगों का शिकार न हों। वे त्रिविध तापों—दुःखों से सन्तप्त और दुःखी न हों। सभी को शारीरिक नीरोगता, मानसिक शान्ति और आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हो।

शमर्वते—हमारे घोड़ों के लिए कल्याण हो।

वेद में गौ और घोड़े का बहुत महत्त्व है। इस मन्त्र में जन शब्द मध्य में है। उसके एक ओर गौ है, तो दूसरी ओर घोड़ा है। गौ दूध के द्वारा हमारा पालन-पोषण करती है, तो घोड़ा हमारी सवारी के काम आता है। हमारी राष्ट्रीय प्रार्थना में भी दोग्ध्री धेनुः और आशुः सप्तिः[१]—खूब दूध देनेवाली गौओं और तीव्र दौड़नेवाले घोड़ों की प्रार्थना की गई है।

हे राजन्! सुशोभन प्रभो! ओषधियों से हमें शान्ति प्राप्त हो। वानस्पतिक भोजन से मनुष्य की इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि शान्त रहती हैं। मांस-भोजन मनुष्य को क्रूर और चञ्चल बनाता है। वानस्पतिक भोजन सात्त्विक है, मांस-भोजन राजसिक और तामसिक है। प्रभो! हमें शक्ति दो, ज्ञान दो कि हम वानस्पतिक भोजन ही करें, मांसाहार से बचें।

□

१९. आदर्श महामानव

द्रुवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः ।
सहसस्पुत्रो ऽअद्भुतः ॥
—ऋ० २।७।६

आदर्श महामानव वह है—**द्रुवन्नः**=वृक्ष आदि ओषधियाँ ही जिसका अन्न=भोजन है। जो **सर्पिः आसुतिः**=घृत-दुग्धादि सारवान् पदार्थों का सेवन करनेवाला है, **प्रत्नः**=सर्वश्रेष्ठ है, **होता**=सब-कुछ देनेवाला है, **वरेण्यः**=सबका वरण करनेवाला और सबसे वरणीय हो, **सहसः पुत्रः**=साहस का पुतला हो, **अद्भुतः**=आश्चर्यकारी गुण-कर्म और स्वभाव से युक्त हो।

इस मन्त्र में आदर्श महामानव बनने के स्वर्णिम सूत्र हैं। आओ, इन सूत्रों को अपनाकर हम भी महामानव बनने का प्रयत्न करें। संसार में कुछ करके दिखाएँ, कुछ बनके दिखाएँ।

१. **द्रुवन्नः**—महामानव वह है जिसका भोजन वानस्पतिक है, जो कन्दमूल-फल आदि पर निर्वाह करता है। मांस मनुष्य का भोजन नहीं है। मनुष्य शाकाहारी प्राणी है। मांस से वृत्तियाँ तामसिक बनती हैं। मांसाहारी योगी तो तीन काल में भी नहीं बन सकता।

२. **सर्पिः आसुतिः**—महामानव वह है जो घी, दूध, मक्खन, मलाई आदि सारवान्, बल और शक्तिदायक पदार्थों का सेवन करनेवाला है। **आयुर्वै घृतम्**=घी आयु को बढ़ाता है, शरीर में बल और शक्ति का सञ्चार करता है। **सोमो गवां पयः**=गाय का दूध तो अमृत है। गाय के दूध से बुद्धि तीव्र बनती है, शरीर में चुस्ती और स्फूर्ति आती है। भैंस के दूध से बुद्धि मोटी होती है और शरीर में आलस्य आता है।

३. **प्रत्नः**—महामानव वह है जो सर्वश्रेष्ठ हो। वेद का आदेश है—**त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः**[१]। हे सौम्य स्वभाव! तू

---

१. ऋ० १।९१।२

अपने शोभन—श्रेष्ठ कर्मों से सुकर्मा बन जा। तू दीर्घजीवी बन। तू अविनाशी बन। तू ऐसा जीवन जी कि लोग तेरे जीवन से प्रेरणा लेकर अपने जीवनों को धन्य बनाएँ।

४. होता—महामानव वह है जो सब-कुछ देनेवाला है, अपने सर्वस्व का होम करनेवाला है। देश, धर्म, जाति, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए अपना तन, मन, धन—सब-कुछ समर्पित करनेवाला हो। हम होता बनें और वेद के शब्दों में कह सकें—

वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम। —अथर्व० १२।१।६२

हे मातृभूमे! हम तेरे लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेवाले हों।

५. **वरेण्यः**—महामानव वह है जो वरणीय हो, जो सबको अपनानेवाला हो, दीन-दुःखियों पर कृपादृष्टिवाला हो। मनुष्य अपने जीवन को ऐसा आदर्श बनाए कि सब उसे अपनाने का प्रयत्न करें।

६. **सहसः पुत्रः**—महामानव वह है जो साहस का पुतला हो, शक्ति का पुञ्ज हो, बलवान् और पराक्रमी हो, अन्तः और बाह्य शत्रुओं से लोहा लेनेवाला हो।

७. **अद्भुतः**—महामानव वह है जो आश्चर्यकारी विद्या और चमत्कारी गुणों से युक्त हो।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगिराज श्रीकृष्ण ऐसे ही महामानव थे। महर्षि दयानन्द अद्भुत विद्वान्, उच्चकोटि के योगी, शक्ति के पुञ्ज और क्षमा की साक्षात् प्रतिमा थे, हम भी वैसा बनने का प्रयत्न करें।

□

२०. हम सूर्य के समान चमकें

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रहः।

अहं सूर्यइवाजनि॥ —साम० १५२

अहम्=मैं **इत् हि**=सचमुच ही **पितुः**=ज्ञानदाता परमात्मा से **ऋतस्य**=वेदज्ञान की **मेधाम्**=बुद्धि को **परिजग्रहः**=सब ओर से ग्रहण करता हूँ। इस वेदज्ञान को प्राप्त करके **अहम्**=मैं **सूर्यः इव**=सूर्य की भाँति **अजनि**=हो गया हूँ।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। —गीता ४।३८

संसार में ज्ञान से बढ़कर पवित्र करनेवाला कुछ नहीं है।

वेद में अन्यत्र कहा है—

तमेव विदित्वाऽ ति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽ यनाय॥

—यजुः० ३१।१८

प्रभु के ज्ञान के बिना मृत्यु से पार उतरने का, जन्म-मरण के चक्र से छूटने का, मोक्ष प्राप्त करने का और कोई उपाय नहीं है।

इस तत्त्व को समझकर भक्त कहता है—मैं तो परमात्मा से वेदज्ञान-प्राप्ति की बुद्धि को सब ओर से ग्रहण करता हूँ। भक्त सत्यज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है। परमात्मा ने सृष्टि के आदि में वेदज्ञान प्रदान किया। भक्त भी इस वेदज्ञान का मन्थन करता है। वह वेदरूपी समुद्र में डुबकियाँ लगा-लगाकर प्रतिदिन नये-नये ज्ञानरत्न निकालता है। संसार का गहन और सूक्ष्म निरीक्षण कर वह सब ओर से ज्ञान प्राप्त करता है।

दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यन्दिनं परि।

—अथर्व० ४।११।१२

मैं प्रातःकाल वेद का दोहन करता हूँ, सायंकाल वेद का दोहन करता हूँ, मध्याह्न में वेद का दोहन करता हूँ।

इस ज्ञान को प्राप्त करके मैं सूर्य के समान हो गया हूँ, सूर्य के समान चमक उठा हूँ, सूर्य के समान ओजस्वी और तेजस्वी हो गया हूँ। सूर्य के समान चमकने के लिए हम सूर्य के गुणों को जीवन में धारण करें—

१. सूर्य बहुत ऊँचा है, हमारे जीवन का लक्ष्य भी बहुत ऊँचा हो। खाना-पीना और मर जाना मनुष्य का ध्येय नहीं है।

२. सूर्य समय पर उदित होता है और समय पर अस्त होता है, हम भी अपनी जीवनचर्या को नियमित बनाएँ। प्रत्येक कार्य को समय पर करें। समय के पालन का विशेष ध्यान रक्खें।

३. उदय होता हुआ सूर्य लाल होता है और अस्त होता हुआ सूर्य भी लाल होता है, इसी प्रकार हम भी चाहे सम्पत्ति हो अथवा विपत्ति—दोनों में सम रहें।

४. सूर्य की सबसे बड़ी विशेषता है—यह गुणों का ग्रहण करता है, दोषों को छोड़ देता है। सूर्य समुद्र से मीठा पानी लेता है, नमक नहीं लेता, इसी प्रकार हम भी गुणग्राहक बनें, दोषों को त्याग दें।

५. सूर्य निरन्तर गतिशील है, हम भी जीवन में आगे बढ़ें, उन्नति करें। हम सदा स्मरण रक्खे—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्। —अथर्व० ८।१।६

हे पुरुष! पौरुष-सम्पन्न मनुष्य! तू उपर उठ, उन्नति कर, आगे बढ़, नीचे मत गिर।

□

२१. आओ, यज्ञ करें

स॒मिधा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒ताति॑थिम्।
आस्मि॑न् ह॒व्या जु॑होतन॥ —यजुः० ३।१

हे साधको! आप **समिधा**=आत्मारूपी समिधा से अग्निम्=ब्रह्मरूपी अग्नि की **दुवस्यत**=सेवा करो। **घृतैः**=हृदय में निष्पन्न प्रेम से—श्रवण, मनन, निदिध्यासन से **अतिथिम्**= अतिथि के समान पूजनीय प्रभु को **बोधयत**=हृदय-मन्दिर में प्रदीप्त करो। **अस्मिन्**=इस प्रज्वलित—प्रदीप्त ब्रह्म में, हृदय में प्रकट हुए ब्रह्म में **हव्या**=श्रद्धा, प्रेम, भक्ति की **आजुहोतन**=सब ओर से आहुतियाँ दो।

हे उपासको! आओ, आज हृदय में आध्यात्मिक यज्ञ करने की इच्छा उत्पन्न हुई है। भौतिक यज्ञ तो समिधा=काष्ठ, घी आदि से होता है, परन्तु आज तो आध्यतिमक यज्ञ रचाना है। इस यज्ञ के लिए तो न बाहर से समिधाएँ लानी हैं, न घृत, सामग्री आदि अन्य वस्तुएँ।

आओ, हम अपनी आत्मा को समिधा बनाकर परमात्मा में होम दें। आज से परमत्मा के प्रति समर्पित हो जाएँ। अब तक तो जीवन-नौका की पतवार हमारे हाथ में थी, आज उसे परमात्मा के प्रति दे डालें। हम पूर्ण समर्पण-भावना से कह उठें—प्रभो! आज से मैं नहीं, मेरी जीवन-नैय्या को तू चला, आप मुझे आदेश, उपदेश और सन्देश दें, मैं प्राणपन से आपकी आज्ञाओं का पालन करूँगा।

आप अतिथि के समान पूजनीय हैं। जैसे अन्न-जलादि से अतिथि की सेवा की जाती है, हम भी घृत से—हमारे हृदय में निष्पन्न प्रेम से, पश्चात्ताप के आसुओं से, दीन-दुःखियों को देखकर आँखों में छलकते आँसुओं से [घृत—क्षरणदीप्त्योः—मानव-जीवन पाकर भी हमसे प्राणियों का उपकार कुछ-भी

नहीं हुआ, केवल भोग-विलास में ही जीवन को नष्ट किया] प्रभु की **परिचर्या**=सेवा करें। ओम् को ऊपर की अरणि और शरीर को नीचे की अरणि बनाकर आपको अपने हृदय-मन्दिर में प्रकट करें।

हे भाइयो ! आओ, ब्रह्मज्योति को प्रकट करके इसमें श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, स्वाध्याय, निरन्तर प्रणव=ओम् जप की आहुतियाँ देते रहें, जिससे यह अग्नि अधिकाधिक प्रदीप्त होती रहे, बुझे नहीं।

ब्रह्माग्नि को प्रज्वलित करना, आत्मा और ब्रह्म-साक्षात्कार करना जीवन का परम और चरम लक्ष्य है। इसी जीवन में उसे प्रकट करें अन्यथा **महती विनष्टिः**[१]—विनाश-ही-विनाश है।

इयं ते यज्ञिया तनूः।[२] यह शरीर तो यज्ञ करने के लिए ही मिला है, अतः आ, इस अध्यात्मयज्ञ को रचा और सिद्धि प्राप्त क्या। स्मरण रख—**राधसे जज्ञिषे**[३]—तेरा जन्म सिद्धि-प्राप्ति के लिए हुआ है।

पोषक प्रमाण—

प्राणरूपी समिधा से—**प्राणा वै समिधः।**—ए० ब्रा० २।४

घृतैः=इन्द्रियशक्तिभिः। इन्द्रियों की शक्तियों से।

□

२२. परमात्मा का आत्मा में धारण

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम्।
तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ —यजुः० १२।१०४

अग्ने=हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! **यत्**=जो आपका **शुक्रम्**=शीघ्रकारी स्वभाव है, **यत्**=जो **चन्द्रम्**=चन्द्रमा के समान आनन्द देनेवाला, **यत्**=जो **पूतम्**=पवित्र और **यत्**=जो आपका **यज्ञियम्**=सङ्गतीकरण योग्य स्वरूप है **ते**=आपके **तत्**=उस स्वरूप को **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए **भरामसि**=हम लोग अपने जीवनों में धारण करते हैं।

प्रभो! आज हमारे जीवनों में एक भव्य भावना जाग्रत् हुई है कि हम दिव्य गुणों—धृति, क्षमा, दम=मन को वश में करना, शौच=अन्दर और बाहर की पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय आदि की प्राप्ति के लिए आपके स्वरूप को अपने जीवन में धारण करते हैं। हम आपके तेज से=तेजस्वी और ओज से ओजस्वी हों।

आप अग्नि हैं, प्रकाशस्वरूप हैं। हम भी प्रचण्ड अग्नि बन जाएँ। जैसे अग्नि में जो कुछ डाला जाता है, वही भस्म हो जाता है, उसी प्रकार हमारे जीवन में जितने दोष और दुर्गुण हैं वे सब भस्मीभूत हो जाएँ तथा हमारे जीवन निर्दोष और निर्मल बन जाएँ।

आपका स्वभाव 'शुक्रम्' है, आप शीघ्रकारी हैं। आपके कार्यों में विलम्ब नहीं होता। हम भी शीघ्रकारी बनें। उद्योगी और पुरुषार्थी बनें। हम न तो आलसी=आज के काम को कल पर टालनेवाले बनें और न प्रमादी—एक घण्टे के कार्य को चार घण्टे में करनेवाले हों। हम यथासमय कार्य करनेवाले हों।

आप 'चन्द्रम्'—चन्द्रमा के समान आह्लादक, शीतल और आनन्द देनेवाले हैं। हम भी ऐसा ही बनने का प्रयत्न करें। हम

प्रिय, मधुर, शीतल, हितकर वाणी बोलें।

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरों को शीतल करे आपहु शीतल होय॥

हम चन्द्रमा के समान सबके प्रिय बनें। जो हमें देखे हमारा ही हो जाए, हम चन्द्रमा के समान आह्लाद देनेवाले हों। सबको सुख दें, दुःख किसी को न दें।

पूतम्—प्रभो! आप पवित्र हैं—**शुद्धमपापविद्धम्** हैं। पाप आपको छू भी नहीं गया है, आप सर्वथा निष्पाप हैं। हम भी मनसा, वाचा, कर्मणा निष्पाप बनें। हम अन्दर और बाहर—दोनों ओर से पवित्र बनें। हमारे कर्म भी पवित्र हों। स्वयं पवित्र बनकर हम दूसरों को भी पवित्र बनाएँ। हम दुराचारियों को सदाचारी बनाएँ, भोगियों को योगी बनाएँ, सामिष भोजियों को निरामिष भोजी बनाएँ। नास्तिकों को आस्तिक बनाएँ, शराबियों की शराब छुड़ाकर उन्हें प्रभु के अमृतरस का पान कराएँ।

यज्ञियम्—आप सङ्गतीकरण योग हैं। मैं निरन्तर आपकी सङ्गति में रहूँ। आपकी सङ्गति से मेरा जीवन भी यज्ञिय बन जाएगा। आपकी सङ्गतीकरण से मैं भी याज्ञिक बन जाऊँगा, सच्चा अग्निहोत्री बन जाऊँगा। जैसे यज्ञ में से ज्वालाएँ उठती हैं, मेरी आत्मज्योति भी जाग्रत् हो जाएगी। जैसे यज्ञ में से सुगन्धि निकलती है, मेरे जीवन से भी दिव्य गुणों की सुगन्धि निकलने लगेगी।

प्रभो! हमें शक्ति दो, बल दो, साहस दो, धैर्य दो जिससे हम आपके स्वरूप को अपने जीवन में धारण कर सकें। हम आपकी दयालुता, निर्भयता, पवित्रता, तेजस्विता, धीरता, ओजस्विता, मन्यु और सह=सहनशीलता को अपने में धारण कर सकें।

२३. प्रभो! हमें तेजस्वी और पराक्रमी बनाओ

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।
१ २ ३ २उ ३ १ २
दधद्रयिं मयि पोषम्॥ —साम० १५२०

अग्ने=हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! **स्वपाः**=उत्तम कर्म करनेवाले प्रभो! **पवस्व**=आप हमारे जीवनों को पवित्र कर दीजिए और **अस्मे**=हममें **वर्चः**=उत्तम तेजस्विता तथा **सुवीर्यम्**=पराक्रम फूँक दीजिए। हममें **रयिम्**=धन को **दधत्**=धारण कीजिए और **मयि**=मुझमें **पोषम्**=शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक पुष्टि दीजिए।

हे प्रभो! आप प्रकाशस्वरूप हैं और सदा शुभ कर्म करनेवाले हैं। आप अपने भक्तों को भी शुभ कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। आपका आदेश है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः। —यजुः० ४०।२

मनुष्य इस संसार में कर्म करते हुए—श्रेष्ठ कर्म करते हुए, निष्काम कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे।

आपसे प्रेरणा पाकर हम भी अकर्म और विकर्म न करें, सदा सुकर्म करें—वेद पढ़ें, यज्ञ करें, दान दें। दीन-दुःखियों की सेवा करें, सत्य बोलें, धर्म का आचरण करें।

हे प्रभो! आप स्वयं पवित्र हैं, अपापविद्ध हैं, आप हमारे जीवनों को भी पवित्र कर दीजिए। आपसे दूर होकर, संसार के थपेड़ों में हम—

अप्रशस्ताइव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि। —ऋ० २।४१।१६

अपवित्र-से हो गये हैं, आप हमारे जीवनों को प्रशस्त बना दीजिए। हमारे जीवन आदर्श हों, वे दूसरों को प्रेरणा प्रदान करनेवाले हों, हमारे जीवन नीचे गिरे हुओं को ऊपर उठानेवाले हों।

प्रभो! हममें **वर्चः**=उत्तम तेजस्विता और ओजस्विता दीजिए—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि

मन्युरसि मन्युं मयि धेहि, सहोऽसि सहो मयि धेहि॥
—यजु:० १९।९

हे प्रभो! आप तेज:स्वरूप हैं, मुझमें भी तेज का आधान कीजिए। आप पराक्रमशाली हैं, मुझमें भी पराक्रम फूँक दीजिए। आप बलशाली हैं, मुझे भी बलशाली बना दीजिए। आप ओजस्वी हैं—दूसरों को प्रभावित करनेवाले हैं, मुझे भी ओजस्वी बना दीजिए। आप मन्यु हैं—दुष्टों पर क्रोध करनेवाले हैं, मुझे भी दुष्टों पर क्रोध करने की शक्ति दीजिए। आप सहनशील हैं, मुझे भी सहनशील बना दीजिए।

आप हमें धन प्रदान कीजिए। धन के बिना संसार का शकट [गाड़ी] चलता नहीं है। संसार-यात्रा के लिए धन भी आवश्यक है।

साईं इतना दीजिए जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ अतिथि न भूखा जाय॥

प्रभो! इतनी कृपा और कीजिए कि मुझे पुष्टि प्रदान कीजिए। मेरा शरीर नीरोग, हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ रहे।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यमूलमुत्तमम्।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ चतुष्टय का मूल आरोग्य है।

मेरा मन निर्मल हो। मेरे मन में सदा शिवसङ्कल्पों का ही उदय हो। मेरे मन में धर्म के भाव हों, विद्या-प्राप्ति की चाह हो, यह योग की तरङ्गों से तरङ्गित होता रहे।

मेरी बुद्धि तीक्ष्ण हो, जो कठिन-से-कठिन समस्याओं का समाधान करनेवाली हो। मेरी बुद्धि ऋतम्भरा-वेद को धारण करनेवाली बन जाए।

मेरा आत्मा स्वर्ण के समान देदीप्यमान हो। वेद के शब्दों में मैं कह उठूँ—

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनम्। —ऋ० १०।४८।५

मैं इन्द्र हूँ, मैं अपनी धन्यता को हार नहीं सकता।

२४. हम उत्साही, कर्मशील व यशस्वी बनें

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि।
अथा नो वस्यसस्कृधि॥ —ऋ० ९।४।३

हे **सोम**=भगवन्! आनन्द-रस के निर्झर, उत्स! तू हमें दक्षम्=बल, उत्साह, पौरुष **सना**=प्रदान कर, **उत**=और **क्रतुम्**=कर्मशीलता, यज्ञ की भावना, विज्ञान भी प्रदान कर। **मृधः** अपजहि=हमारे जीवन का नाश करनेवाले शत्रुओं—काम-क्रोध आदि का विध्वंस कर, उन्हें मार ही डाल। **अथ**=इस प्रकार नः=हमारे जीवनों को **वस्यसः**=यशस्वी, मङ्गलमय, श्रेष्ठ **कृधि**=बना दो।

हे सोम! परम रसीले! तू आनन्दस्वरूप है और मैं हूँ निरानन्द। आनन्द-रस के निर्झर, उत्स! तू मेरे जीवन को भी अपने आनन्द से आप्लावित कर दे—सराबोर कर दे। तू बरस, बरस और मैं तेरे आनन्द-रस में जी भरकर नहाऊँ, डुबकी पर डुबकियाँ लगाऊँ।

प्रभो! तू सकल-ऐश्वर्यों का भण्डार है। तुझे छोड़कर कहाँ जाऊँ, किससे माँगू, किसके समक्ष हाथ फैलाऊँ। मैं तो तुझ अखुट दानी से ही प्रार्थना करता हूँ, तू हमारे जीवनों को बल, उत्साह और पौरुष से आपूर कर दे—भर दे। **बलमसि बलं मयि धेहि**[1]—आप तो बलस्वरूप हैं, मेरे जीवन में भी बल का आधान कर दो। मुझे वह बल और शक्ति दो कि मेरे मन में उत्साह की उमङ्गें और तरङ्गें हिलोरें मारती रहें। मुझे वह उत्साह और पौरुष प्रदान कर कि मैं जन-जन में, घर-घर में वेद का निनाद गुँजा सकूँ। तू मुझे ऐसा पौरुष प्रदान कर कि हताशा और निराशा कभी मेरे समीप न फटकें।

देवाधिदेव! तू हमारे जीवन में क्रतु=कर्मशीलता प्रदान कर,

---

१. यजुः० १९।९

हमारे जीवन में यज्ञ की भावना जगा और अद्भुत विज्ञान प्रदान कर। परमपिता परमात्मन्! आपकी कृपा से हम—**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः**।[१] सौ वर्ष तक कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करें। हम कर्महीन, आलसी और प्रमादी न बनकर कर्मशील बनें। हम यज्ञशील बनें, पञ्चमहायज्ञ करनेवाले बनें। परोपकार करें, श्रेष्ठ कर्म करें, हम वैज्ञानिक बनें। संसार के उपकार के लिए नाना प्रकार के आविष्कार करें।

हे शत्रु-संहारक परमात्मन्! आप हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार कर दीजिए। काम-क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार—ये हमारे जीवनों को नष्ट करनेवाले हैं। देव! आप इन शत्रुओं को तो सर्वथा मसल दीजिए। हमारे जीवन सभी दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःखों से रहित होकर निर्मल और श्रेष्ठ हों। हमारा काम संयम में, क्रोध करुणा में, लोभ दान में, मोह प्रेम में और अहंकार स्वाभिमान में बदल जाए।

हे करुणाकर! आप हमारे जीवनों को आनन्द, बल, उत्साह, पौरुष, कर्मशीलता, यज्ञ की भावना से भरकर और काम-क्रोध आदि शत्रुओं के विध्वंस से यशस्वी, मङ्गलमय और श्रेष्ठ बना दीजिए।

हमारा जीवन व्यर्थ-सा न होकर यशस्वी हो। हमारा जीवन आनन्दमय हो, हम पवित्र बनें, दूसरों को पवित्र बनाएँ। हमारा चरित्र महान् हो, हमारा आचार-विचार-व्यवहार आदर्श हो। हमारे जीवन दूसरों को भी अपने प्रकाश से प्रकाशित कर दें। हम धर्मशील बनें, सत्यवादी बनें। समय पड़ने पर देश और धर्म के काम आएँ।

□

२५. हम नास्तिक और दुष्टों के सङ्ग से बचें

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्।
मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः॥ —साम० ७३२

त्वा=तुझ सज्जन, सदाचारी का **मूराः**=मूढ़, विवेकहीन मनुष्य **मा आदभन्**=अभिभव न करें—तुझे दबा न लें। **अविष्यवः**=दुर्जन, पाखण्डी, कामी, दुराचारी **मा**=तुझे न दबा लें। **उपहस्वानः**=उपहास करनेवाले—मुँह में राम बगल में छुरी, ऐसे मनुष्य तुझपर शासन न करें। तू **ब्रह्मद्विषः**=नास्तिक, वेदविरोधी, ब्राह्मणद्वेषी, कुटिल प्रकृति के लोगों का तो **मा कीं वनः**=थोड़ा-सा भी सङ्ग मत कर, उनका साथ तो सर्वथा छोड़ दे।

हे भद्र मनुष्यो! विवेकहीन, मूर्ख लोग तुम्हें दबा न लें। वे अपने दोष और पापपूर्ण विचारों से तुम्हारी सुमति, सदाचार और उत्तम व्रतों को समाप्त करके अपने कुविचारों और दुर्विचारों को आपमें संक्रान्त न कर दें। दुष्टों, मूर्खों, खलों से सावधान रहो। प्रभु से प्रार्थना करो—

दुष्ट सङ्ग जनि देय विधाता।

दुर्जन, कामी, दुराचारी, भोग-विलास में रत मनुष्य भी तुझे न दबा लें।

हीयते मतिस्तात हीनैः सह समागमात्।

नीचों के साथ रहने से मनुष्य की बुद्धि कम हो जाती है।

हम दुर्जन के स्थान पर सज्जन बनें, कामी के स्थान पर संयमी बनें, दुराचारी के स्थान पर सदाचारी बनें, भोग-विलास में डूबने के स्थान पर जितेन्द्रिय बनें। हम अपने उपदेशों, आचरण, व्यवहार से दुर्जनों, कामी और भोग-विलासियों के जीवनों को भी बदल दें।

उपहास करनेवाले, मुँह में राम बगल में छुरी—ऐसे मनुष्य,

रूक्ष-व्यवहार करनेवाले, दोगले मनुष्य भी तुझपर शासन न करें। हम ऐसे व्यक्तियों के पास भी न बैठें, ऐसे व्यक्तियों के पास बैठेंगे तो उनका हमपर शासन हो जाएगा।

हे भद्रपुरुष! तू नास्तिक, वेद-विरोधी, ब्राह्मणद्वेषी, कुटिल प्रकृति के मनुष्यों का तो थोड़ा-सा भी सङ्ग मत कर, उनका साथ तो सर्वथा त्याग दे।

नास्तिक=ईश्वर को न माननेवालों की सङ्गति हेत्वाभासों से आस्तिक को भी नास्तिक बना देगी। आस्तिक भी सन्ध्यादि शुभकर्मों को तिलाञ्जलि देकर नास्तिकों की श्रेणी में आ जाएगा।

वेद-विरोधियों के सङ्ग रहनेवाला व्यक्ति भी वेद-विरोधी बन जाएगा। वेद के विषय में व्यर्थ की शङ्काएँ और कुशङ्काएँ करेगा।

ब्राह्मणों से द्वेष करनेवाले और कुटिल प्रकृति के लोगों का सङ्ग भी त्याग दो। जो सच्चे ब्राह्मणों से द्वेष करेगा, उसका विनाश ही होगा, कुटिल प्रकृति के लोगों के सङ्ग से जीवन में कुटिलता ही आएगी।

जीवन को सुजीवन बनाने के लिए, आत्मोत्थान और आत्मकल्याण के लिए महापुरुषों का सङ्ग करो, उनके जीवनों का अवलोकन करो, उनके जीवनों का आचरण करो।

दुष्टों का सङ्ग मनुष्य की कीर्ति का नाशक है, आकाशपुष्प की भाँति उनमें करुणा, दया, सत्य, सदाचार, परदुःखकातरता, शौच, सन्तोष तप, स्वाध्याय, ईश्वर-भक्ति का अभाव होता है, अतः दुष्टों के सङ्ग से बचो।

❑

२९. आत्मा का पुनर्जन्म

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति।
अभि द्रोणान्यासदम्॥
—ऋ० ९।३।१

एषः=यह आत्मा देवः=नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करनेवाला है। **अमर्त्यः**=यह अविनश्वर आत्मा **पर्णवीः**=पङ्खों से गति करनेवाले पक्षी के इव=समान दीयति=गति करता है—उड़ान भरता है और द्रोणानि=नाना प्रकार के शरीररूपी कलशों में अभि+आसदत्=आ बैठता है।

आत्मा क्या है? यह देव है, यह नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करनेवाला है। जैसे बालक व्यर्थ की क्रीड़ाएँ करता है, इसी प्रकार यह आत्मा भी खाना-पीना, मौज उड़ाना, भोग-विलास प्राण-पोषण में रत रहता हुआ अपने अमूल्य मानव-जीवन को नष्ट करता है।

यह आत्मा अविनाशी है। शरीर नाशवान् है, परन्तु आत्मा अमर है। गीता [२।२३] में कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

शस्त्र इसे काट नहीं सकते, अग्नि इसे जला नहीं सकता, जल इसे गीला नहीं कर सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकता।

जैसे पक्षी अपने दो पङ्खों से उड़कर एक डाल से दूसरे डाल पर, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जा बैठता है, इसी प्रकार यह आत्मारूपी पक्षी भी ज्ञान और कर्मरूपी दो पङ्खों से उड़ान भरता है और एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में पहुँच जाता है।

इस मन्त्र में पुनर्जन्म का स्पष्ट प्रतिपादन है। पुनर्जन्म वैदिक धर्म का अकाट्य सिद्धान्त है।

संसार में कोई सर्वाङ्ग पूर्ण है, कोई लूला-लङ्गड़ा है, कोई

काना है, कोई अन्धा है। कोई सुखी है, तो कोई दुःखी है। कोई धन-सम्पन्न है, तो कोई दरिद्र है। यह विषमता क्यों है? यह विषमता मनुष्य के कर्मों के कारण है। पूर्वजन्म में मनुष्य जैसे कर्म करता है, वैसा ही फल भोगता है। परमात्मा अपनी इच्छा से किसी को धनी और किसी को निर्धन नहीं बनाता, वह अपनी इच्छा से किसी को आँखोंवाला और किसी को अन्धा नहीं बनाता। परमात्मा न्यायकारी है, वह किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। वह तो जो मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल देता है।

पुनर्जन्म को न मानने से अकृताभ्यागम और कृतहानि ये दोष भी आते हैं।

अन्य मतों में भी इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है—

जो आत्माएँ हममें प्रकट होती हैं, वे हमारे जीवन का नक्षत्र हैं। हम किसी अन्य स्थान पर अस्त हुए थे और बहुत दूर से चले आ रहे हैं। *—विलियम वर्ड्ज़ वर्थ*

हमचू सब्ज़ा बारहा रुयिदा अम।
हफ़्त सद हफ़्ताब क़ालब दीदम अम॥

—मोलवी रूम

सब्जियों की भाँति मैं अनेक बार उगा हूँ। मैंने सात सौ सत्तर शरीर देखे हैं।

एन आ वक्तबूदम कि आदम न बूद।
कि आदम अदम बूद व हव्वा न बूद॥ —शमस तबरेजी

मैं उस समय भी था जब आदम नहीं था और आदम तथा हव्वा दोनों नहीं थे।

शरीर नाशवान् है और आत्मा अजर-अमर है। इस सिद्धान्त को समझकर खोटे कर्मों से बचो, शुभकर्म करो। इसी में कल्याण है। □

२७. विश्व को आर्य बनाओ

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।

अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ —ऋ० ९।६३।५

अप्तुरः=प्रजा को सन्मार्ग में प्रेरित करनेवाले कर्मकुशल विद्वान् **इन्द्रम्**=परमपिता परमात्मा के राज्य को **वर्धन्तः**=बढ़ाते हुए **विश्वम्**=सारे संसार को **आर्यम्**=श्रेष्ठ **कृण्वन्तः**=बनाते हुए, **अराव्णः**=समाज-विद्वेषी, अदानशील, कंजूस, शत्रुओं को **अपघ्नन्तः**=मारते हुए, उनके जीवनों को बदलते हुए [अभि अर्षन्ति]=निरन्तर, सब ओर आगे बढ़ते जाते हैं।

यह संसार परमात्मा का साम्राज्य है। **एको विश्वस्य राजति।** वह अकेला सारे ब्रह्माण्ड पर शासन करता है। इस संसार में आर्य और दस्यु, सदाचारी और कदाचारी, शान्त और क्रोधी, दानी और कंजूस सभी प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं।

कर्मकुशल विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे प्रजा को सन्मार्ग में प्रेरित करते हुए परमेश्वर के साम्राज्य को बढ़ावें। कैसे बढ़ेगा ईश्वर का साम्राज्य? संसार में आर्यों के बढ़ने और अनार्यों के घटने से परमात्मा के राज्य की वृद्धि होगी। यदि परमेश्वर के भक्त उत्तम हैं तो परमेश्वर की प्रशंसा होगी और भक्त चोरी करते हैं, अन्याय से धन कमाते हैं, वस्तुओं में मिलावट करते हैं, कम तोलते हैं, रिश्वत लेते और देते हैं, घात-पात करते हैं, तो भगवान् की भी निन्दा ही होगी। किसी ने ठीक ही कहा है—

खुदा के बन्दों को देखकर खुदा से मुन्किर हुई है दुनिया।
जिस खुदा के हैं ऐसे बन्दे वो कोई अच्छा खुदा नहीं है॥

हम परमात्मा के साम्राज्य को फैलाएँ। कैसे फैलेगा उसका साम्राज्य? विद्वान् लोग अपनी प्रेरणाओं से जनता को आर्य बनाएँ। आर्य कौन है?

शान्तस्तितिक्षुर्दान्तिश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालुर्नम्रश्च आर्यः स्यादष्टभिर्गुणैः॥

जिसमें निम्न आठ गुण होते हैं, वह आर्य है—

१. **शान्तः**—संसार के निवासी शान्त बनें। वे तनिक-सी बात पर उत्तेजित व क्रुद्ध होनेवाले न हों। सभी के तन, मन और बुद्धि—सब शान्त हों।

२. **तितिक्षुः**—सभी सहनशील बनें। आपत्ति और कष्टों में, सम्पत्ति और विपत्ति में सम रहें।

३. **दान्तः**—चञ्चल मन को वश में करनेवाला आर्य है। मन की चञ्चलता को मिटाकर उसे परमात्मा में लगाएँ। मन विषयों में न भटकता रहे।

४. **सत्यवादी**—सत्यवादी आर्य है। **नस्ति सत्यात् परोधर्मः।** सत्य से बढ़कर धर्म नहीं है। **सत्यमेव जयति।** संसार में सत्य की ही विजय होती है। **सत्यं स्वर्गस्य सोपानम्।** सत्य स्वर्ग की सीढ़ी है। हम संसार को असत्य से हटाकर सत्यवादी बनाएँ।

५. **जितेन्द्रियः**—जिसने अपनी सभी इन्द्रियों को वश में किया हुआ है, वह आर्य है। विद्वान् अपनी प्रेरणा से मनुष्यों को जितेन्द्रिय बनाएँ। सभी आँख से अच्छा देखनेवाले, कानों से भद्र सुननेवाले हों।

६. **दाता**—दानशील आर्य है। सभी को दानी बनने की प्रेरणा दें। समाज में, राष्ट्र में सभी दिल खोलकर दान देनेवाले हों।

७. **दयालु**—दयालु आर्य है। सभी को दयालु बनाने का प्रयत्न करें। प्रत्येक साम्राज्यवासी दूसरे को दुःख में देखकर दुःखी हो जाए और उसके कष्ट को दूर करने का प्रयत्न करे।

८. **नम्रः**—जो नम्र है, विनीत है, सौम्य है, वह आर्य है। राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति विनीत बने।

संसार के लोगों में आर्यत्व के गुणों का विकास करना ही प्रभु के साम्राज्य का फैलाना है।

इसी बात को प्रकारान्तर से यूँ कहा है—समाज-विद्वेषियों के, शत्रुओं के, अदानशीलों के, कंजूसों के जीवन को बदलकर उन्हें समाज-प्रेमी, राष्ट्रहितैषी और दानशील बना दें। यही उनको मारकर भगाना है। ❑

२८. प्रभु-प्राप्ति के साधन

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥ —साम० ६३०

अयम्=यह **गौः**=आलस्य से दूर रहनेवाला—पुरुषार्थी **पृश्निः**=ज्ञान-प्राप्ति की इच्छावाला **आ+अक्रमीत्**=चारों ओर से क्रमण करता है—ज्ञान-प्राप्ति के लिए भरसक यत्न करता है। यह जिज्ञासु **पुरः**=सर्वप्रथम **मातरम्**=वेदमाता को **आसदत्**=प्राप्त करता है, उसे पढ़ने और समझने का प्रयत्न करता है **च**=और इस ज्ञान-मार्ग से **पितरम्**=उस रक्षक प्रभु को **प्रयन्**=प्रकर्षरूप से प्राप्त होता है जो **स्वः**=स्वयं प्रकाशमान् और आनन्दस्वरूप है।

मानव-जीवन का परम और चरम लक्ष्य है—प्रभु की प्राप्ति। प्रभु की प्राप्ति कैसे हो? प्रभु-प्राप्ति का क्रम यह है—

१. उपासक गौः बने। वह आलस्य से दूर रहकर पुरुषार्थी बने।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति॥

आलस्य शरीर के अन्दर रहनेवाला मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है। उद्यम के समान मनुष्य का कोई मित्र नहीं है, उद्यमी पुरुष दुःख नहीं उठाता है।

२. **पृश्निः**=उसके अन्दर प्रबल जिज्ञासा हो। प्रभु-प्राप्ति के लिए तड़प हो, तीव्र आकुलता और व्याकुलता हो। योगदर्शन में कहा है—

तीव्रसंवेगानासन्नाः। —योग० १।२१

तीव्र संवेगवालों को सफलता शीघ्र मिलती है।

३. **आ+अक्रमीत्**=यह उपासक अपनी सभी ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान-प्राप्ति में लगाये। यह आँखों से सर्वत्र परमात्मा के सौन्दर्य

को निहारे, सर्वत्र परमात्मा के सौन्दर्य को देखे। कानों से वेद-मन्त्रों को सुने, प्रभु-महिमा के गानों को सुने। नासिका से ओम् का जाप करे [जप नासिका से ही होता है।] जिह्वा से प्रभु-महिमा के गीत गाये, वेद-मन्त्रों का उच्चारण करे। त्वगिन्द्रिय से पदार्थों को छू-छूकर 'नेति-नेति'—यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है, ऐसा ज्ञान प्राप्त करे। इस प्रकार इन्द्रियों को ज्ञान-प्राप्ति में लगाने से इसे अणु-अणु में और कण-कण में प्रभु की महिमा के दर्शन होंगे।

४. यह सर्वप्रथम **असदत् मातरम् पुरः**—वेदमाता को अपनाए, क्योंकि वेद उसी परमेश्वर का प्रतिपादन करते हैं, उसी की महिमा के गीत गाते हैं, उसी को प्राप्त करने का उपदेश देते हैं—

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति। —ऋ० १।१६४।३९

जो वेद में प्रतिपादित उस परमात्मा को नहीं जानता, वह वेद पढ़कर भी क्या करेगा, अर्थात् उसका वेद पढ़ना व्यर्थ है।

वेद कल्याणी वाणी है। यह माता के समान हमारे जीवन का निर्माण करती है और अन्त में हमें प्रभु-दर्शन कराती है।

५. **पितरं च प्रयन् स्वः**—अब हमें उस प्रभु का दर्शन होता है। वह प्रकाशस्वरूप और आनन्दमय परमेश्वर हमारे हृदय-मन्दिर में प्रकट होता है। उस प्रभु को पाकर साधक कृतकृत्य हो जाता है। अब उसे संसार में कुछ जानना शेष नहीं रहता। जो कुछ जानना था, वह उसने जान लिया। वह परमात्मा हमारा पिता है, पालक और रक्षक है, वह पिता की भाँति पग-पग पर हमारी रक्षा करता है।

२९. जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम्।
मृळा सुक्षत्र मृळय॥

—ऋ० ७।८९।१

हे वरुण=सब दुःखों को दूर करनेवाले! वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ परमात्मन्! **राजन्**=अपने तेज से देदीप्यमान् प्रभो! **अहम्**=मैं **मृन्मयम्**=मिट्टी से बने इस पञ्चभौतिक शरीर में **मा उ षु**=न ही **गमम्**=जाऊँ, बार-बार जन्म-मरण के चक्र में न फँसूँ। **हे सुक्षत्र**=क्षतों से त्राण करनेवाले प्रभो! **मृळ**=मुझे सुखी कर **मृळय**=अवश्य दया कर।

हे वरुण! मेरा दुर्भाग्य देखिए—मैं मृत्यु का ग्रास बना, पुनः जन्म ग्रहण किया, फिर मरा। इस प्रकार मर-मरकर कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि सहस्रों योनियों में परिभ्रमण किया—

आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा॥

—निरुक्त १३।६।१९

मैंने भाँति-भाँति के आहारों का सेवन किया, अनेक माताओं का स्तनपान किया, अनेक माता, पिता तथा बन्धु-बान्धवों की गोद में खेला। नाना प्रकार का कष्ट सहते हुए उलटे होकर मल-मूत्रमय माता के गर्भ में लटका रहा। प्रभो! अब तो जन्म लेते-लेते, कष्ट झेलते-झेलते थक गया हूँ। अब इस शरीररूप मिट्टी के घर में पुनः नहीं जाना चाहता, क्योंकि यह शरीर अत्यन्त अपवित्र है। व्यासजी कहते हैं—

स्थानाद् बीजादुपष्टम्भान्निष्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिं विदुः॥

—पात० यो० व्यासभाष्य २।५

मल-मूत्रादि अत्यन्त दूषित और दुर्गन्धित पदार्थों से लिप्त

माता की उदरदरी तो इस शरीर का उत्पत्ति-स्थान है। माता और पिता का अत्यन्त मलिन रज और वीर्य इस शरीर का बीज=उपादानकारण है। इस शरीर का जो उपष्टम्भ=आश्रय है, वह रस-रुधिर आदि भी खाये-पीये, अन्न-जल आदि के परिपाक से उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त अपवित्र पदार्थों से बनता है। इस शरीर से मल-मूत्र, प्रस्वेद=पसीना आदि अत्यन्त अपवित्र पदार्थ सदा बहते रहते हैं। जिस शरीर को चन्दन, इत्र आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित और वस्त्राभूषणों से विभूषित किया जाता है, वही शरीर मरने पर अस्पृश्य हो जाता है। इस शरीर की सदा पवित्रता करनी पड़ती है, इसलिए पण्डित लोग इसे अपवित्र कहते हैं।

यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद्बहिर्भवेत्।
दण्डमादाय लोकोऽयं शुनः काकांश्च वारयेत्॥

यदि शरीर के अन्दर जो कुछ है, वह बाहर हो जाए तो प्रत्येक मनुष्य को डण्डा लेकर कुत्तों और कौओं से इसकी रक्षा करनी पड़े।

प्रभो! अब इस मिट्टी के घर में, इस अपवित्र घर में पुनः आने की इच्छा नहीं है। अब तो मुझे मोक्ष चाहिए, आपका आनन्दधाम चाहिए।

हे सुक्षत्र! क्षतों से त्राण करनेवाले, कष्टों से बचानेवाले प्रभो! मुझे सुखी कर, मुझपर दया कर। तेरी कृपा का एक कण चाहता हूँ। तेरे एक कण से मेरे जीवन का कल्याण हो जाएगा। प्रभो! विलम्ब मत करो। बस, अपनी कृपा का एक कण देकर निहाल कर दो।

☐

३०. प्रभो! तुझ-जैसा कोई नहीं

न किं इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन्।
न क्येवं यथा त्वम्॥

—साम० २०३

हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! **त्वत्**=तुझसे **उत्तरम्**=उत्कृष्ट, श्रेष्ठ **न किं**=कुछ भी नहीं है। हे **वृत्रहन्**=शत्रु का संहार करनेवाले प्रभो! तुझसे **ज्यायः**=अधिक बढ़ा हुआ **न अस्ति**=कोई नहीं है। हे देव! **यथा**=जैसा **त्वम्**=तू है, **एवम्**=ऐसा भी **न कि**=कोई नहीं है।

हे इन्द्र! आपसे उत्कृष्ट, श्रेष्ठ कोई नहीं है। आप अनुपम हैं, आपकी तुलना में कोई ठहर ही नहीं सकता। ज्ञान में, बल में, धन में, सौन्दर्य में, ओज में, तेज में कोई आपका सामना नहीं कर सकता। ज्ञान के आप सूर्य हैं। आपके ज्ञान से—वेदरूपी-ज्ञान से ऋषि-मुनियों का हृदय आलोकित होता है।

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

—यो० १।२६

आप पूर्व ऋषि-महर्षियों के भी गुरु हैं और गुरु तो काल के कराल गाल में विला जाते हैं, परन्तु आप तो काल के भी काल हैं।

आप वेदज्ञान के वेत्ता और उपदेष्टा हैं, बल में भी आपका कोई साम्मुख्य नहीं कर सकता।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्। —ऋ० १०।१२१।१

आप अपने बल से, पृथिवी से लेकर द्युलोक तक को धारण कर रहे हैं।

त्वमादित्याँ आवह। —ऋ० १।९४।३

आप सूर्यों को उठाये फिरते हैं।

आपके समक्ष सारा ब्रह्माण्ड झुकता है।

धन के आप आकर [खान] है। सभी प्रकार के धनों के आप भण्डार हैं, इसीलिए राजा और रङ्क—सभी झोली फलाए हुए आपसे ही याचना करते हैं। तू ही सबकी कामनाओं का पूरक है।

तेरे सौन्दर्य की भी तुलना नहीं है। तू सौन्दर्यों का सौन्दर्य है, तेरी एक झलक पाने के लिए योगी लोग तरसते हैं, तेरी एक झलक पाकर साधक निहाल हो जाता है। तुझे पाकर और कुछ देखने की इच्छा नहीं रहती।

तू सबसे बढ़कर ओजस्वी और तेजस्वी है, इसलिए भक्त तुझसे ही ओज और तेज की कामना करता है।

वृत्रहन् न ज्यायः अस्ति—काम-क्रोधादि वासनाओं को नष्ट करनेवाले हे प्रभो! तुझसे अधिक बढ़ा हुआ कोई नहीं। हे देवाधिदेव! आपमें प्रत्येक गुण की पराकाष्ठा है। आप काम-क्रोधादि को भस्म करनेवाले हैं। आप वासनाओं के विनाशक हैं। आप महान् हैं, उदार हैं। इतने महान् हैं कि जो नास्तिक हैं, आपको गालियाँ देते हैं, आप उनका भी भरण-पोषण करते हैं।

आपसे श्रेष्ठ और आपसे बढ़े हुए की तो बात ही क्या **न क्येवं यथा त्वम्**—ऐसा भी तो कोई नहीं है, जैसे आप हैं। आपकी बराबरीवाला भी कोई नहीं है। आप अनुपम हैं, अद्वितीय हैं। आपकी महिमा का कोई अन्त नहीं है।

प्रभो! मैं जितना-जितना आपकी महिमा के बारे में सोचता हूँ, उतना-उतना आपकी उस महिमा के आनन्त्य में डूबता जाता हूँ। देव! मैं अपने-आपको आपमें डुबाकर—आपमें सराबोर करके आप-जैसा ही सुन्दर, उदार, महान् और दिव्य गुणोंवाला बन जाऊँ। प्रभो! अपनी करुणा का एक कण दे दो, मैं निहाल और मालामाल हो जाऊँगा।

□

३१. शत्रु भी हमारी प्रशंसा करें

उ॒त नः॑ सु॒भगाँ॑ अ॒रिर्वो॒चेयु॑र्दस्म कृ॒ष्टयः॑ ।
स्यामेदिन्द्र॑स्य॒ शर्म॑णि ॥
—ऋ० १।४।६

दस्म=दुर्गुण और पापों को क्षीण करनेवाले हे परमात्मन्! **अरिः**=हमारे शत्रु **कृष्टयः**=मनुष्य **उत**=भी **नः**=हमें **सुभगान्**=श्रेष्ठ और सौभाग्यशाली **वोचेयुः**=कहें। हम **इन्द्रस्य**=तुझ परमैश्वर्यशाली भगवान् की **शर्मणि**=छत्रछाया में, आश्रय में **इत्**=ही **स्याम**=सदा रहें।

किसी भी व्यक्ति के मित्र, परिवार-परिजन तो उसकी प्रशंसा करते ही हैं। बन्धु-बान्धवों को तो अपने प्रीति-पत्र में अवगुण भी गुण ही दीखते हैं। वे तो उसके दुर्गुणों को भी गुण ही कहते हैं, उसके गुणों को पर्वत के समान महान् चित्रित करते हैं, इसलिए उनकी प्रशंसा का कोई महत्त्व और मूल्य नहीं होता। प्रशंसा तो वह है कि शत्रु भी वाह-वाह कह उठें।

हम ऐसा ही बनने का प्रयत्न करें कि हम शत्रुओं के भी प्रीति-भाजन बन जाएँ। प्रस्तुत मन्त्र ऐसा बनने का मार्ग बताता है—

भक्त कहता है—हे प्रभो! आप 'दस्म' हैं, आप अपनी प्रेरणा से अपने उपासकों और भक्तों की बुराइयों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और पापों का क्षय करनेवाले हैं। आप अपने कृपा-कटाक्ष से हमारे '**विश्वानि दुरितानि**' सब दुर्गुणों को दूर कर दीजिए। बुराइयाँ दूर होकर हमारे जीवन निष्कलङ्क बन गये तो शुत्रओं को भी हमारे निष्कलङ्क जीवन की प्रशंसा करनी पड़ेगी। यदि प्रभु-कृपा से हमारे जीवनों में दया, करुणा, प्रेम, वात्सल्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, धैर्य, क्षमा, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, सन्तोष आदि सद् गुणों का वास हो जाए तो सचमुच हमारे शत्रु भी बरबस हमारी प्रशंसा करेंगे।

ऐसा हम कब बन पाएँगे ? ऐसा हम तब बन पाएँगे, जब हम परमात्मा की 'शर्म'—शरण में रहें, परमात्मा की छत्रछाया में रहें। जो परमात्मा की छत्रछाया में रहेगा वह परमात्मा-जैसा बनने का प्रयत्न करेगा। परमात्मा न्यायकारी, दयालु, शुद्ध, पवित्र और अपापविद्ध है, हम भी ऐसे ही बनें, तब हमारी भी ऐसी ही स्थिति बन जाएगी कि शत्रु भी मुक्तकण्ठ से हमारी प्रशंसा करेंगे।

जिसने भी अपना जीवन ऐसा आदर्श बनाया, उसके जीवन की शत्रुओं ने भी प्रशंसा की। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने अपने जीवन को आदर्श बनाया था, परिणामस्वरूप रावण भी राम की प्रशंसा करता है, मन्दोदरी भी उसके गुणों के गीत गाती है। अजातशत्रु युधिष्ठिर के गुणों की प्रशंसा कौरव भी करते हैं। महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य और पाण्डित्य की प्रशंसा उनके घोर शत्रु और विरोधी भी करते हैं। महर्षि की मृत्यु पर उनके घोर विरोधियों ने कहा था कि—"दयानन्द गया और निष्कलङ्क गया।"

आओ, हम भी अपने जीवनों को सुजीवन बनाने का प्रयत्न करें। कवि के शब्दों में—

वह चाल-चल कि उम्र खुशी से कटे तेरी।
लोग जब नाम लें तो अदब से लिया करें॥

ऐसा जीवन बनाने के लिए अपने जीवनों को दिव्य गुणों से अलंकृत कीजिए।

□

३२. कैसा धन?

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय॥ —ऋ० ६।५३।२

हे परमात्मन्! आप **नः**=हम उपासकों को **नर्यम्**=मनुष्यों का हित करनेवाला, **वीरम्**=शत्रुओं को कम्पित करके उन्हें दूर भगानेवाला, **प्रयत-दक्षिणम्**=दान-दक्षिणा देने योग्य **वामम्**=सुन्दर, सुख देनेवाला **गृहपतिम्**=सब आवश्यकताओं की पूर्ति करके घर का पालन और रक्षण करनेवाला **वसु**=धन **अभि-प्रनय**=प्राप्त कराइए।

प्रभो! संसार-यात्रा को पूर्ण करने के लिए मुझे कामना ने आ-घेरा है। मेरी कामना है—

वयं स्याम पतयो रयीणाम्। —ऋ० १०।१२१।१०

मैं ही नहीं, हम सब धन-ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

हमें धन तो चाहिए, परन्तु कैसा धन? आप ही ने तो उपदेश दिया है—

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः। —अथर्व० ७।११५।४

हम पुण्य, पवित्र लक्ष्मी में रमण करें।

कैसा है वह पवित्र धन?

१. **नर्यम्**—हमारा धन नरहितकारी, मनुष्यमात्र का कल्याण करनेवाला हो। हम अपने धन से दीन-हीनों का, दुःखी जनों का, निर्धनों का, अनाथ और अभावग्रस्तों का पालन-पोषण करें।

२. **वीरम्**—हमारा धन शत्रुओं को कम्पित करके परे भगानेवाला हो। जब देश पर कोई शत्रु आक्रमण कर दे, हमारी संस्कृति, सभ्यता और धर्म पर कोई आपत्ति आ रही हो तो हम शत्रुओं को परे खदेड़ने और देश-धर्म को बचाने के लिए अपनी थैलियों का मुँह खोल दें, जिससे हमारे वीर जवान शत्रुओं को कम्पित करके उन्हें परे भगा दें।

३. **प्रयतदक्षिणाम्**—हमारा धन ऐसा हो जिसमें से दान और दक्षिणा का अंश निकाला जाता हो। हम सुपात्रों को दान दें, अभावग्रस्त मेधावी छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दें। बड़े-बड़े यज्ञ रचाएँ, उनमें विद्वानों को दिल खोलकर दान दें। वैदिक साहित्य के प्रकाशन के लिए दान दें।

४. **वामम्**—वह धन सुन्दर हो, परिश्रम से कमाया गया हो, किसी का शोषण करके, गला काटकर न कमाया गया हो। अन्याय से कमाया धन अशोभन होता है, सुन्दर नहीं होता।

हमारा धन सुख देनेवाला हो। अधर्म का धन सुख न देकर दुःख देता है। महर्षि मनु कहते हैं—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततो सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति॥

—मनु० ४।१७४

अधर्म से मनुष्य आरम्भ में फूलता-फलता है, नाना प्रकार के कल्याण देखता है, अपने शत्रुओं को भी वश में कर लेता है, परन्तु अन्त में समूल नष्ट हो जाता है।

हमें नष्ट करनेवाला धन नहीं चाहिए, हमें तो हमारे जीवनों को सुखी करनेवाला, शान्ति-प्रदाता धन चाहिए।

५. **गृहपतिम्**—हमें ऐसा धन चाहिए जो गृहस्थ की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करके घर का पालन-पोषण और रक्षण करनेवाला हो। इतना धन तो होना ही चाहिए कि नून [नमक], तेल, लकड़ी की चिन्ता न रहे।

धन कमाओ और खूब कमाओ, परन्तु हमारी कमाई नेक हो, पवित्र हो। पापी लक्ष्मी को तो हम वेद के शब्दों में कह दें—

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि। —अथर्व० ७।११५।१

हे पापी लक्ष्मि! तू यहाँ से दूर भाग जा।

३३. मद्यपान मत करो

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते॥ —ऋ० ८।२।१२

हृत्सु-हृदय तक—दिल खोलकर **पीतासः**-शराब पीनेवाले **युध्यन्ते**-परस्पर लड़ते हैं, गाली-गलौज करते हैं, एक-दूसरे के साथ मार-पीट करते हैं। वे **सुरायाम्**-शराब के नशे में **दुर्मदासः न**-दुर्मद-दुष्ट बुद्धिवाले के समान हो जाते हैं न=और **नग्नाः**-नङ्गे होकर **ऊधः**-रातभर नालियों में पड़े हुए **जरन्ते**-बड़बड़ाते रहते हैं।

इस मन्त्र में मद्यपान की निन्दा की गई है और शराबी की दुरवस्था का चित्र खींचा गया है।

मद्य-शराब ऐसा पदार्थ है जिसे पान करके मनुष्य अपना सर्वनाश करता है। यह मदिरा मनुष्य के मन, मस्तिष्क व शरीर सभी के लिए हानिकारक है। किसी ने ठीक ही कहा है—

चित्ते भ्रान्तिर्जायते मद्यपानाद्
भ्रान्तं चित्तं पापचर्यामुपैति।
पापं कृत्वा दुर्गतिं यान्ति मूढास्
तस्मान्मद्यं नैव पेयं न पेयम्॥

शराब पीने से चित्त भ्रान्त हो जाता है, चित्त के भ्रान्त होने पर मनुष्य पाप कर बैठता है। पापकर्म करके मूर्ख लोग दुर्गति को प्राप्त करते हैं, अतः मद्यपान नहीं करना चाहिए, कभी नहीं करना चाहिए।

इस शराब के प्याले में क्या होता है, सुनिए—

मदः प्रमादः कलहश्च निद्रा बुद्धिक्षयो धर्मविपर्ययश्च।
सुखस्य हन्ता दुखस्य पन्था अष्टौ अनर्था वसन्ति कर्के॥

सुरा-पात्र में आठ अनर्थ होते हैं। कौन-कौन-से अनर्थ हैं, सुनिए—१. **मदः**—यह नशा लाती है। शराब के नशे में चूर होकर मनुष्य सब-कुछ भूल जाता है। वह अकथनीय को कह डालता है और अकरणीय को कर डालता है। २. **प्रमादः**—शराब पीकर मनुष्य प्रमादी हो जाता है, वह एक घण्टे के काम

को चार घण्टे में करता है। ३. **कलहः**—शराब पीकर लड़ाई-झगड़ा करना तो साधारण-सी बात है। यह घर में भी लड़ाई-झगड़ा करता है और बाहर भी। अनेक बार शराब के नशे में कुकर्म और हत्याएँ भी कर डालता है। ४. **निद्रा**—शराब पीकर मनुष्य अपनी सुध-बुध भूल जाता है और खूब सोता है। ५. **बुद्धिक्षयः**—यह बुद्धि की नाशक तो है ही when the win is in, the intellect is out. जब यह शराब अन्दर पहुँचती है तो बुद्धि बाहर आ जाती है। ६. **धर्मविपर्ययः**—शराबी धर्मविरुद्ध कार्य करता है, अतः यह अधर्म और अनर्थ का मूल है। ७. **सुखस्य हन्ता**—यह सुख की नाशक है, इसके सेवन से स्वर्ग-तुल्य घर घोर नरक बन जाते हैं और अन्त में ८. **दुःखस्य पन्था**—यह दुःखों का मार्ग है।

ऐसी विनाशकारी है यह शराब! यह सर्वनाशकारी है, इसीलिए कहा गया है—

गिलासों में जो डूबे फिर न उबरे ज़िन्दगानी में।
हज़ारों बह गये इन बोतलों के बन्द पानी में॥

शराब सारे पापों की जड़ है। शराब मनुष्य को दो पैर का पशु बना देती है। यह शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा सबको विकृत कर देती है। यह राजा को रङ्क बना देती है। यह अनाचार और अपराधों को जन्म देती है। यह हँसते-खेलते परिवारों को मिट्टी में मिला देती है।

शराबी दुर्मद होकर लड़ते हैं। नग्न होकर गन्दी नालियों में पड़े रहते हैं, अतः इस दुर्व्यसन को त्यागो।

परमात्मा ने हमें सर्वश्रेष्ठ मानव-शरीर दिया है। यह प्रभु-प्राप्ति का द्वार है। अपने शरीर को मलिन मत करो। सदा स्मरण रक्खो—

न कर बरबाद अपनी जिन्दगी ए बोतल के दीवाने।
वही काटेगा बुढ़ापे में जो बोएगा जवानी में॥

३४. मेरा परिचय

बाहू मे बलमिन्द्रियः हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम॥ —यजुः० २०।७

मे=मेरी **बाहू**=दोनों भुजाओं में **बलम्-इन्द्रियम्**=बल और धन है, **मे**=मेरे **हस्तौ**=दोनों हाथों में **कर्म वीर्यम्**=कर्म करने की शक्ति और पराक्रम है। **मम**=मेरा **आत्मा**=अपना स्वरूप और **उरः**=हृदय **क्षत्रम्**=क्षतों से त्राण करनेवाला, दुःखों से रक्षा करनेवाला है।

आप मेरा परिचय पूछते हैं, तो सुनिए मैं कौन हूँ—

मे बाहू बलमिन्द्रियम्—मेरी भुजाओं में बल और धन है। मैं निर्वीय नहीं हूँ। मैं शक्ति का पुञ्ज हूँ। मेरी भुजाएँ—**यशोबलम्**—यश और बल से युक्त है। इतना ही नहीं, मेरी भुजाएँ धन से भी सम्पन्न है। इन भुजाओं से कठोर परिश्रम करके मैं धन के भी ढेर लगा देता हूँ। प्रभु ने भुजाएँ मनुष्य और केवल मनुष्य को दी हैं, पशु-पक्षियों के पास भुजाएँ नहीं है। मेरी भुजाओं में बल और धन का अजस्र स्रोत है।

मे हस्तौ कर्म वीर्यम्—मेरे हाथों में कर्म करने की शक्ति और पराक्रम है। कैसे हैं मेरे हाथ, वेद के शब्दों में—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्॥

—अथर्व० ७।५०।८

मेरे दाहिने हाथ में कर्म है और बाएँ हाथ में विजय। मैं अपने कर्मों के कारण गौओं, पृथिवी और ज्ञानेन्द्रियों का विजेता बनूँ। मैं घोड़ों, राष्ट्रों और कर्मेन्द्रियों का विजेता बनूँ। मैं सुवर्ण आदि सम्पत्ति और नाना प्रकार के धनों का विजेता बनूँ।

और देखिए—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजो ऽयं शिवाभिमर्शनः॥

—अथर्व० ४।१३।६

मेरा दाहिना हाथ ऐश्वर्यशाली है और बायाँ हाथ तो उससे भी अधिक ऐश्वर्यशाली है। मेरे दाहिने हाथ में सारी ओषधियाँ रक्खी हैं और बाएँ हाथ का तो स्पर्श भी कल्याणकारी है।

मम आत्मा उरः क्षत्रम्—मेरा आत्मा—मेरा अपना स्वरूप और मेरा हृदय दीन-दुःखियों को आपत्ति, कष्टों और सङ्कटों से बचानेवाला है।

दुःखियों को देखकर मैं दुःखी हो जाता हूँ, मेरी आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है, उनके दुःखों को दूर करने के लिए मैं कटिबद्ध हो जाता हूँ।

योगिराज श्रीकृष्ण के शब्द में मेरी भावना होती है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ —गीता ४।८

हे अर्जुन! जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ जाता है तब धर्म के उत्थान के लिए, प्राणिमात्र के कल्याण के लिए, दुःखियों के दुःख को दूर करने के लिए मैं अपनी आत्मा का उत्सर्ग=त्याग कर देता हूँ। [सृज्=विसर्गे]

अपने आत्म-गौरव को समझो। अपने को दीन-हीन मत मानो। अपनी शक्तियों को पहचानो। अपना उत्थान करने के लिए, दीन-दुःखियों का त्राण करने के लिए, मानव-समाज का उद्धार करने के लिए दृढ़-सङ्कल्प से लङ्गर-लङ्गोटे कसकर तैयार हो जाओ।

□

३५. दरिद्र की पूजा-सामग्री

नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति।
अथैतादृग्भरामि ते ॥ —ऋ० ८।१०२।१९

मे=मेरे पास **अघ्न्या**=गौ **नहि अस्ति**=नहीं है और **न**=न ही **वनन्वति**=वनों को, वृक्षों को काटनेवाली **स्वधितिः**= कुल्हाड़ी है। **अथ**=मैं तो **एतादृक्**=ऐसे ही, रिक्त-हस्त—खाली हाथ **ते**=तुझे **भरामि**=हृदय-मन्दिर में धारण करता हूँ।

प्रभो! आज मेरे मन में यज्ञ करने की तरङ्ग उठी है। मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, परन्तु उसके लिए तो घी, सामग्री [नाना प्रकार की ओषधियाँ, चावल, खाँड आदि] समिधाएँ, यज्ञकुण्ड, यज्ञपात्र, दीपक, दीपशलाका [दियासलाई], कर्पूर आदि पदार्थ चाहिएँ। घृत दूध के बिना नहीं बन सकता और दूध गौ आदि के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। समिधाएँ= लकड़ियाँ वनों में वृक्षों से मिल सकती हैं, परन्तु काटने के लिए कुल्हाड़ी चाहिए, परन्तु देव! **न मे अस्त्यघ्न्या**=मेरे पास गौ नहीं है और वनों को काटने के लिए कुल्हाड़ी भी नहीं है। सचमुच बड़ी विकट समस्या है!

वेद और मनु आदि स्मृतियों में पञ्चमहायज्ञों को दैनिक कर्त्तव्य बताया गया है। सोचते-विचारते भक्त कह उठता है—जैसी-कैसी भी समिधाएँ मैं डालूँ, उन्हें स्वीकार करो। भगवन्! घी नहीं है; पीलू, बड़, पीपल की समिधाएँ नहीं मिली, जङ्गल से गिरी-पड़ी समिधाएँ बीन लाया हूँ, उन्हें ही स्वीकार करो, मेरे यज्ञ को सफल करो और मुझे कृतार्थ करो।

नहि मे अस्त्यघ्न्या—मेरे पास गौ नहीं है। गौ यज्ञ का प्रधान साधन है और भारतीय-संस्कृति का प्रतीक है। बिना गौ और यज्ञ के चित्रण के भारतीय-संस्कृति का चित्र अधूरा रहेगा।

यज्ञ की बात तो जाने दो, शरीर-पोषण के लिए भी गौ का होना आवश्यक है। गौएँ दुबले-पतले को मोटा बना देती हैं,

रूपहीन को सुन्दर बना देती हैं।

भगवन्! न शरीर-पोषण के लिए गौ है, न यज्ञ के लिए गौ है, फिर मैं तेरी पूजा-अर्चना कैसे करूँ? तेरी भेंट क्या धरूँ। संसार के सभी पदार्थ तो तेरे दिये हुए हैं, उन्हें आपको कैसे अर्पित करूँ?

अजब हैरान हूँ भगवन् तुझे कैसे रिझाऊँ मैं।
नहीं वस्तु कोई ऐसी जिसे सेवा में लाऊँ मैं॥

प्रभो! गुरु के पास जाना हो तो कुछ लेकर जाना चाहिए। आप तो गुरुओं के गुरु हैं, परम गुरु हैं। मैं तेरी भेंट में क्या रक्खूँ। **अथैतादृग्भरामि ते**—प्रभो! मैं तो रिक्त-हस्त—खाली हाथ आ रहा हूँ। सुभद्रा कुमारी के शब्दों में—

पूजा और पुजापा प्रभुवर इसी पुजारिन को समझो।
दान-दक्षिणा और निछावर इसी भिखारिन को समझो॥
मैं उन्मत्त प्रेम की प्यासी हृदय दिखाने आई हूँ।
जो कुछ है बस यही पास है इसे चढ़ाने आई हूँ॥
चरणों पर अर्पित है इसको चाहे तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है ठुकरा दो या प्यार करो॥

वेद के शब्दों में—

भूयिष्ठान्ते नमऽ उक्तिं विधेम। —यजुः० १४।१६

मैं तो बारम्बार नमस्कार की भेंट अर्पित करता हूँ।

□

३६. प्रभो! मेरे जीवन-रथ को आगे बढ़ा

इन्द्र॒ प्र णो॒ रथ॑मव प॒श्चाच्चि॒त्सन्त॑मद्रिवः ।
पु॒रस्ता॑देनं मे कृधि ॥ —ऋ० ८।८०।४

इन्द्र=हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! **अद्रिवः**=हे ज्ञानरूप वज्रवाले प्रभो! **नः**=हमारे **पश्चात् चित् सन्तम्**=पीछे पड़े हुए भी, पिछड़े हुए भी **रथम्**=जीवन-रथ को **प्र+अव**= प्रकृष्टता से रक्षा करो। **मे**=मेरे **एनम्**=इस पीछे पड़े हुए रथ को **पुरस्तात्**=आगे **कृधि**=कर दो, आगे बढ़ा दो।

वेद में मानव-शरीर को कहीं वृक्ष कहा है, जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चार फल लगते हैं। कहीं इसे दिव्य-नौका कहा है, जिसमें बैठकर मनुष्य भवसागर से पार उतर कर मोक्ष-प्राप्त करता है। कहीं इसे अयोध्या नगरी कहा है, जिसपर आक्रमण करके कोई इसे परास्त नहीं कर सकता।

यह शरीर ऋषियों का आश्रम है—**सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे**—हमारे शरीर में सात ऋषि बैठे हुए हैं, जो निरन्तर इसकी रक्षा कर रहे हैं। यह नारायण की नगरी है। यह देह देवालय है, प्रभु का मन्दिर है। प्रभु के दर्शन यहीं होंगे।

इस मन्त्र में शरीर की उपमा एक रथ से दी गई है। कठोपनिषद् में कहा है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

—कठो० १।३।३-४

आत्मा को रथी जानो और शरीर रथ है। बुद्धि को सारथि जानो और मन लगाम है। इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं और विषय

उनके चरने के स्थान हैं। इन्द्रियों और मन से युक्त आत्मा को ज्ञानी लोग भोक्ता कहते हैं।

हे इन्द्र! आपने यह रथ दिया था जीवन-यात्रा को पूर्ण करने के लिए, जीवन में आगे बढ़ने के लिए, उन्नति करने के लिए, परन्तु अपने अज्ञान के कारण, अपने आलस्य और प्रमाद से मेरा जीवन-रथ पिछड़ गया। मेरे साथी अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ से आगे बढ़ गये। कोई आध्यात्मिक क्षेत्र में शिखर पर जा पहुँचा, कोई वैज्ञानिक क्षेत्र में आगे बढ़ गया। कोई धार्मिक क्षेत्र में मुझसे बाज़ी मार ले-गया। कोई दैवी-सम्पत्ति में, कोई तप में, कोई विवेक-वैराग्य में आगे निकल गया। कर्मवीरों के, शूरवीरों के, ज्ञानियों, योगियों, महात्माओं के रथ, एक-से-एक दिव्य और भव्य रथ आगे बढ़े जा रहे हैं।

प्रभो! मैं पिछड़ गया। मेरा जीवन-रथ बहुत पीछे रह गया, मैं कब तक घिसटता हुआ चलूँगा। प्रभो! मुझे बल दो, शक्ति दो, साहस दो। मेरे जीवन-रथ की रक्षा करो। मेरे पीछे पड़े हुए रथ को आगे बढ़ा दो। आप ज्ञानरूप वज्रधारी हैं। अपने वज्र से मेरे आलस्य, प्रमाद, अज्ञानरूप सभी शत्रुओं का संहार कर दो, मेरे जीवन में अपना इन्द्रबल भर दो, अपना ओज, तेज, ऐश्वर्य भर दो। इस प्रकार मेरे पीछे पड़े रथ को सबसे आगे बढ़ा दो। मैं दूसरों को लाँघकर आगे बढ़ जाऊँ। मैं प्रत्येक क्षेत्र में शिखर पर पहुँचूँ।

प्रभो! आप ही सहास देंगे और आप ही मेरे पिछड़े हुए रथ को आगे बढ़ाएँगे! केवल और केवल हमें तो आपका ही आश्रय है।

२७. प्रभो! मुझे यशस्वी बना दे

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने।
विश्वा अप द्विषो जहि॥ —ऋ० ९।६१।२८

हे इन्दो—परम रसीले, चन्द्रमा के समान आह्लाद देनेवाले प्रभो! **पवस्व**—तू हमें पवित्र कर दे। हे प्रभो! आप **वृषा**=सुखों के वर्षक और कामनाओं के पूरक हैं। **सुतः**—हमारे हृदय में प्रकट हुए आप **नः**—हमें **जने**—समस्त मानव-समाज में **यशसः**=यशस्वी **कृधि**—कर दीजिए। हे देव! आप हमारी **विश्वा**=सब **द्विषः**=द्वेषभावनाओं को **अपजहि**—हमसे दूर करके नष्ट कर दीजिए।

हे इन्दो! आप परम रसीले हैं। आपके लिए कहा गया है—

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति॥ —तै० २।७

आप रसमय हैं। रस-ही-रस हैं। जो आपको प्राप्त कर लेते हैं, वे भी आनन्दमय हो जाते हैं।

आप रस=आनन्द के सागर हैं। जो जितना व्यापक होता है, वह उतना ही पवित्र होता है। आप सर्वव्यापक होने के कारण सबसे अधिक पवित्र हैं, अतः अपने कृपाकटाक्ष से मुझे भी पवित्र बना दीजिए। मेरे दुर्गुण, दुर्व्यसनों को दूर करके मुझे शुद्ध, पवित्र और निर्मल बना दीजिए। मेरा शरीर रोगों से रहित, मेरा मन वासनाओं से शून्य और मेरा आत्मा दिव्य कुन्दन के समान निर्मल हो।

हे प्रभो! आप वृषा हैं। आप सुखों की वृष्टि करनेवाले हैं और कामनाओं के पूरक हैं। आप सभी पर निरन्तर सुखों की वृष्टि करते हैं। आप तो बिन माँगे ही हमारी झोलियाँ भरते जाते हैं। आपने सुन्दर शरीर प्रदान किया, उत्तम परिवार दिया। प्रभूत भोग-सामग्री प्रदान की, सुसन्तान प्रदान की, समाज में आदर और सम्मान दिया—यह सब आपकी अहैतुकी कृपा का ही तो फल है। हे वृषन्! आप भक्तों की कामनाओं के पूरक हैं। भक्तों

ने सच्चे हृदय से जो कामना की, वही पूर्ण हुई। देव! हमें भी कामनाओं ने आ घेरा है। हमारी कामनाओं को पूर्ण कीजिए। मेरी कामना है कि—

मूर्धाहं रयीणां.........भूयासम्। —अथर्व० १६।३।१

मैं धनिकों में शिरोमणि बनूँ।

मेरी कामना है कि ज्ञान में मैं बृहस्पति बनूँ। मेरा हृदय सन्तापरहित हो। मैं धैर्य में हिमालय की भाँति और गम्भीरता में समुद्र के समान बनूँ।

परमात्मन्! हमारे हृदय में प्रकट हुए आप हमें मानव-समाज में यशस्वी बना दीजिए। जिसके जीवन में यश नहीं वह भी कोई जीवन है। अपना पेट तो कौआ और कुत्ता भी पाल लेता है। पेट-पालना जीवन नहीं है। हम यशस्वी बनें। हम मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगिराज श्रीकृष्ण, महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, रामप्रसाद बिस्मल, चन्द्रशेखर आज़ाद, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और भगतसिंह-जैसा यशस्वी जीवन प्राप्त करें। संसार में जिसका यश है, वही जीवन है, सुजीवन है, अतः प्रभो! तू हमें भी यशस्वी बना दे।

देव! हमारी द्वेष-भावनाओं को हमसे दूर करके उन्हें नष्ट कर दो। हम किसी के प्रति द्वेष की भावनाएँ न रक्खें। हमारे जीवन में सबके लिए कल्याण-कामनाएँ हों। हम जब भी सोचें सबका भला सोचें। हमारे जीवन में सबके लिए मङ्गल-कामनाएँ हों। हम किसी से द्वेष न करें और अपने जीवन को ऐसा आदर्श बनाएँ कि हमसे भी कोई द्वेष न करे। हम सब परस्पर एक-दूसरे से प्रेम करें। फिर भी यदि हम किसी से द्वेष करते हों अथवा कोई हमसे द्वेष करता हो तो उस द्वेष-भाव को नष्ट कर दीजिए और हमारे जीवनों को द्वेषरहित कर दीजिए। □

३८. पाश-विमोचन

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे॥

—ऋ० १।२५।२१

अविद्यान्धकार को नष्ट करनेवाले हे वरणीय विद्वन्! आप कृपा करके **नः**=हमारे **जीवसे**=दीर्घ और सुजीवन के लिए **उत्तमम्**=उत्तम **पाशम्**=पाश को, बन्धन को **उत् मुमुग्धि**= परमेश्वर को सामने रखकर छुड़ा दो। **मध्ययम्**=मध्यम-पाश को **वि मुमुग्धि**=अशान्ति का कारण समझाकर छुड़ा दो और **अधमानि**= अधम पाशों को **अवमुमुग्धि**=घृणा दिलाकर छुड़ा दो।

मनुष्य संसार में नाना प्रकार के पाशों, बन्धनों से बँधा हुआ है। किसी कवि ने कुछ पाशों का वर्णन इस रूप में किया है—

घृणा शङ्का भयं लज्जा गुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं च मानं च अष्टपाशाः प्रकीर्तिताः॥

घृणा, शङ्का, भय, लज्जा, निन्दा=चुग़ली, कुल, शील और मान=अभिमान—ये आठ पाश हैं।

इनके अतिरिक्त भी अनेक पाश हैं। इस मन्त्र में विद्वानों से प्रार्थना की गई है कि वे हमें पाशों से छुड़ाएँ। यहाँ पाशों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है—उत्तम, मध्यम तथा अधम और तीनों ही प्रकार के पाशों से छुड़ाने की प्रार्थना की गई है। दीर्घजीवन के लिए सभी पाशों से छूटना आवश्यक है। ये पाश=बन्धन हमारे जीवनों को पाश-पाश=चूर-चूर कर देंगे।

हे विद्वानो! हमारे उत्तम पाशों को हमसे छुड़ाइए। उत्तम पाश हैं—पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा। इन पाशों का छूटना बड़ा कठिन है। पुत्रैषणा को छोड़ देनेवाले भी वितैषणा में डूब जाते हैं। संसार-त्याग करनेवाले बड़े-बड़े महात्मा भी वित्त के मोह में डूब जाते हैं। लौकेषणा तो बड़ों-से-बड़ों का भी पीछा

नहीं छोड़ती।[१] विद्वान्, ज्ञानी महात्मा परमेश्वर को हमारे सामने रखकर, हमें इन पाशों से छुड़ाएँ। परमात्मा के आगे संसार के सारे रस नीरस हैं, फीके हैं। उस परम रस का पान करके सारे रस=संसार के सारे भोग और ऐश्वर्य फीके पड़ जाते हैं।

मध्यम पाश हैं—ईर्ष्या, राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि। ये सभी पाश जीवन को नरक बनानेवाले हैं। ईर्ष्या से दूसरे को तो हानि पहुँचती है या नहीं, ईर्ष्यालु तो स्वयं अपनी ईर्ष्या में जलता रहता है। इसी प्रकार के राग-द्वेष आदि पाश हैं। विद्वान् लोग इन्हें जीवन, समाज, राष्ट्र और विश्व में अशान्ति का कारण समझाकर हमारे इन मध्यम पाशों को छुड़ा दें।

अधम पाश हैं—मद्यपान, मांस-भक्षण, जुआ खेलना, व्यभिचार करना आदि। ये सारे पाश भी जीवन का विनाश करनेवाले हैं। शराब पीकर मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है। शराबी दुर्मद बनकर परस्पर लड़ते हैं, रात्रि में नङ्गे होकर नालियों में पड़े रहते हैं। मांस बिना हिंसा के नहीं मिल सकता। मांसाहारी योगी तो तीन काल में भी नहीं बन सकता। जुआ ऐसा व्यसन है, जिससे कुछ ही घण्टों में राजा रङ्क बन जाते हैं। राजा नल और महाराज युधिष्ठिर इस जुए के कारण ही राजपाट से हाथ धो बैठे। व्यभिचार मनुष्य को सुखा डालता है। यह मनुष्य के शारीरिक विकास, मानसिक निर्मलता, बौद्धिक तीव्रता और आत्मिक उन्नति सभी को चौपट कर डालता है। विद्वान् लोग इन व्यसनों के प्रति घृणा दिलाकर हमेंशें से छुड़ाएँ।

सभी प्रकार के पाशों से बचने पर हमारा जीवन शुद्ध, पवित्र और निर्मल होकर सौ वर्ष ही नहीं उससे भी दीर्घ होगा। □

---

१. Fame is the last infirmity of the noble mind.

३९. आओ! आज प्रभु का गुणगान करें

अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम्।
हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे॥ —ऋ० ८।४३।३१

हम **अग्निम्**=सबको आगे ले-चलनेवाले, ज्योतिर्मय, **मन्द्रम्**=आनन्द के सागर, **पुरुप्रियम्**=बहुतों—सबके प्यारे, **शीरम्**=यज्ञों में रमण करनेवाले, **पावकशोचिषम्**=पावक और दीप्त प्रभु को **मन्द्रेभिः हृद्भिः**=प्रसन्न मन से **ईमहे**=चाहते हैं।

आज हमारा हृदय आह्लाद से ओत-प्रोत है, मन हर्षित एवं प्रसन्न है, प्रसन्नता में बल्लियों उछल रहा है। आज अपने भाव-भरित हृदय से हम प्रभु की कामना करते हैं, परमेश्वर को चाहते हैं। कैसा है वह परमेश्वर?

१. **अग्निम्**—वह परमेश्वर अग्नि है, जाज्वल्यमान है, प्रकाशमय है, ज्योतियों की ज्योति है। वह सबकी उन्नति का साधक है। प्रभु की उपासना करते हुए मैं भी अग्नि का गोला बन जाऊँ। ओजस्वी और तेजस्वी बन जाऊँ। मैं प्रकाशमय और ज्योतिर्मय हो जाऊँ। प्रभु के प्रकाश को धारण करके चमक उठूँ। मैं सबकी उन्नति में सहायक बनूँ। अग्नि में जो कुछ डालो वह भस्म हो जाता है। मैं भी संसार के अज्ञान-अन्धकार, पाप-ताप और पाखण्डों को भस्म कर दूँ।

२. **मन्द्रम्**—परमेश्वर आनन्दी हैं, वे आनन्द के सागर हैं। वे रसमय हैं। वे अपने भक्तों को आनन्द के सागर में सराबोर करनेवाले हैं। वे आनन्दप्रद हैं। हम भी उस आनन्द-सागर में गोते लगाकर आनन्दमय बनें और दूसरों को भी आनन्द प्रदान करें, दूसरों को सुखी करें। वह सदा प्रसन्न रहनेवाला है। आओ, हम भी उसकी प्रसन्नता का आनन्द लूटें।

३. **पुरुप्रियम्**—वे प्रभु सबके प्रिय हैं। वह सबका प्यारा है। आपत्ति और कष्ट आने पर नास्तिक भी उसे पुकार उठते हैं।

वह आकर्षण का केन्द्र है। जैसे लोहा चुम्बक की ओर खिंचा चला जाता है, उसी प्रकार भक्त भी उसी की ओर खिंचे चले जाते हैं।

४. **शीरम्**—वे प्रभु यज्ञों में रमण करनेवाले हैं। यज्ञ प्रभु को सबसे अधिक प्रिय हैं। '**कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति**'[1] मन्त्र के भावार्थ में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—"किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ देता है, उसके लिए क्या होता है? वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उसको छोड़ देता है। फिर वह पूछता है कि ईश्वर उसको किसलिए छोड़ देता है। वह उत्तर देनेवाला कहता है कि दुःख भोगने के लिए।" आओ, हम भी यज्ञों में रमण करें, क्योंकि **होतृषदनं हरितं हिरण्ययम्।**[2] यज्ञ करनेवाले का घर सन्तान आदि से हराभरा और धन-धान्य से भरपूर होता है।

५. **पावकशोचिषम्**—वह परमेश्वर प्रिय ही नहीं है, वह पावक और दीप्त भी है। वह शुद्ध है, अपापविद्ध है। वह स्वयं पवित्र है और अपने भक्तों को पवित्र करनेवाला है। वह अत्यन्त तेजस्वी है। उसके तेज से सारा संसार जगमगा रहा है। हम प्रभु के तेज को धारण करके स्वयं चमकें और सारे संसार को चमकाएँ।

□

४०. तीन दिव्य उपदेश

मुमुक्तमस्मान् दुरितादवद्याज्जुषेथां
यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥ —अथर्व० ५।६।८

हे सोम और रुद्ररूप परमात्मन्! **अस्मान्**=हमें **दुरितात् अवद्यात्**=निन्दनीय दुराचार से **मुमुक्तम्**=मुक्त करो, बचाओ। हमें **यज्ञम्**=यज्ञ को **जुषेथाम्**=सेवित कराओ। **अस्मासु**=हममें **अमृतम्**=नीरोगता और अमृतत्व का **धत्तम्**=स्थापन करो।

१. प्रभो! आप **अस्मान् दुरितात् अवद्यात् मुमुक्तम्**—हमें निन्दनीय दुराचार से बचाओ। हम पाप से बचें। हम शरीर, वाणी और मन के पापों से बचें। शरीर से होनेवाले पाप हैं—

१. चोरी करना, बिना स्वामी की आज्ञा के उसकी वस्तुओं को ले-लेना, २. हिंसा करना—बिना कारण निरापराध प्राणियों की हिंसा करना, ३. पर-स्त्री के साथ सम्भोग करना।

वाणी के पाप हैं—१. कटु और कठोर बोलना, २. झूठ बोलना, ३. पीठ पीछे किसी की निन्दा करना, ४. असम्बद्ध प्रलाप—व्यर्थ की बातें करना—गप्पें लड़ाना।

मन के पाप हैं—१. अन्याय से दूसरे के धन को लेना का विचार करना, २. मन से दूसरे का बुरा सोचना, अशिवसङ्कल्प करना, ३. नास्तिकता—परलोक, पुनर्जन्म, ईश्वर और वेदों की निन्दा करना, इनकी सत्ता से इन्कार करना।

ये दस पाप हैं। इन पापों से स्वयं सदा बचना और इनसे बचने के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करना।

२. **यज्ञं जुषेथाम्**—हमें यज्ञ का सेवन कराओ। हम यज्ञशील बनें। हम अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञों को करनेवाले बनें। हम सदा शुभ कर्म करें, उत्तम कर्म करें, सत्कर्म करें। हम निर्माणात्मक कर्म करें, ध्वंसात्मक कर्म न करें। दीन-दुःखियों

की सेवा करें। कला-कौशल, उद्योगधन्धों का विस्तार करें।

३. **अस्मासु अमृतं धत्तम्**—हममें अमृतत्व का स्थापन करो। हम स्वस्थ और नीरोग रहते हुए सौ वर्ष तक जीएँ तथा जीवन के परम और चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करें। स्वस्थ और नीरोग रहने के लिए हम हितभुक्—हितकारी पदार्थों का सेवन करें। मितभुक्—हितकारी पदार्थों को भी मितमात्रा में खाएँ—नपा-तुला भोजन करें। ऋतभुक्—समय पर खाएँ और परिश्रम से उपार्जित अन्न का ही सेवन करें। मोक्ष-प्राप्ति के लिए योगाभ्यास करें।

इस छोटे से मन्त्र में धर्म का सार आ गया है—

४. **अमृत**—मोक्ष-प्राप्त करना मनुष्य-जीवन का परम लक्ष्य है। उसका साधन है—सत्कर्म करना और पापाचरण न करना। यह निषिद्ध कर्म का निषेध है।

केवल इन तीन बातों से मनुष्य का कल्याण हो सकता है और उसका बेड़ा भव से पार हो सकता है।

कितने व्यापक उपदेश को वेद ने कितने थोड़े शब्दों में कह दिया है!

❑

विशेष प्रचारित लघु ट्रैक्ट

उपनिषत् सूक्ति-सुधा : संकलन : श्री ज्ञानचन्द शास्त्री
अनेक भाष्यकारों के सहयोग से उपनिषदों की सूक्तियों का अर्थ सहित संकलन किया गया है। ३४ विभिन्न विषयों पर २०० से अधिक सूक्तियाँ सम्मिलित हैं।

ईश्वर स्तुति-प्रार्थनोपासना मन्त्रों का प्रवचन : पं० हरिशरण
चतुर्वेद भाष्यकार पं० हरिशरणजी सिद्धान्तालंकार द्वारा ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासना के मन्त्रों पर मार्मिक प्रवचन।

गायत्री साधना : वेदप्रकाश शास्त्री
प्रस्तुत पुस्तक में सर्वसाधारण व्यक्ति के स्तर और समय को ध्यान में रखकर गायत्री साधना के तीन रूप प्रस्तुत किये गए हैं।

नमस्ते की व्याख्या : पं० सुखदेव विद्यावाचस्पति
वैदिक साहित्य के अनुसार हमारा परस्पर सत्कार एवं आसीर्वादसूचक शब्द क्या होना चाहिए? आईए जानें।

वैदिक आदर्श : स्वामी श्रद्धानन्द
पं० हरिशरणजी विद्यालंकार द्वारा अनुवादित स्वामीजी के प्रवचनों का संग्रह।

वेद का राष्ट्रगान : श्री राजनाथ पाण्डेय
अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त का भावपूर्ण काव्यानुवाद

ईश्वर-पूजा का वैदिक स्वरूप : पं० रामचन्द्र देहलवी
आइए जानें ईश्वर की पूजा का वैदिक प्रकार क्या है? अत्यन्त उपयुक्त दृष्टान्त देकर इसकी रोचकता भी बढ़ा दी गई है। कठिन उर्दू फारसी शब्दों का भी सरलीकरण कर दिया गया है।

आर्य मन्तव्य दर्पण : मेधार्थी स्वामी
आर्योद्देश्यरत्नमाला तथा स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के लक्षणों पर वेद मन्त्रों से प्रमाण सहित शब्दार्थ और शिक्षा के साथ।

ओ३म् की व्याख्या : रामसिंह आर्य भजनोपदेशक

ईश्वर के ओंकारादि नामों की स्पष्ट व्याख्या तथा उसके गुण कर्म स्वभाव का यथावत् बोध करानेवाली यह पुस्तक अत्यन्त सरल-सुबोध शैली में प्रस्तुत है।

सन्ध्या विनय : प्रो० नित्यानन्द पटेल

पुस्तक में सन्ध्या के अर्थों के अनुरूप भाव भरी प्रार्थनाएँ दी गयी हैं। सन्ध्या को जीवनोपयोगी बनाने में सहायक ये प्रार्थनाएँ, उत्तमोत्तम संकल्पों की उद्बोधक हैं।

ऋषि दयानन्द कीर्तिगान : पं० नारायणप्रसाद बेताब

डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा सम्पादित लेखक की ऋषि दयानन्द के जीवन प्रसंगों पर लिखे गये चार प्रसिद्ध मुसद्दसों (लम्बी कविताओं) का संकलन तथा लेखक के व्यक्तित्व तथा कृतित्व की शोधपूर्ण जानकारी।

वैदिक सूक्त माला : पं० वीरसेन वेदश्रमी

आत्मपावन सूक्तम्, श्रीसूक्तम्, सरस्वती सूक्तम्, सुमंगलम सूक्तम्, संजीवनं सूक्तम्, वाणिज्य सूक्तम् का संग्रह।

नशा नाश की निशानी—शराब : ब्र० नन्दकिशोर

सभी पापों की जड़ तथा सर्वनाश की निशानी 'शराब' को जड़ से उखाड़ फैंकने का यह प्रयास है।

—o—

गायत्री चालीसा

वेद परमेश्वर का ज्ञान है। वेद मनुष्य को सत्यमार्ग पर ले जाता है। वेद की शिक्षाओं पर आचरण करने से मनुष्य का कल्याण सम्भव है। वेद की शरण में आइए और अपने जीवन को सफल बनाइए। **गायत्री चालीसा** में चारों वेदों से गायत्री छन्दवाले ४० मन्त्रों का चयन करके उनकी सुललित, हृदयहारी एवं मनोहर व्याख्या की गई है। इन मन्त्रों में न अतिशयोक्ति है, न असम्भव गप्पें हैं। वेद की शिक्षाओं पर आचरण करने से मनुष्य का जीवन उच्च, दिव्य और महान् बनेगा। मन्त्रों को पढ़िए विचारिए, चिन्तन और मनन कीजिए, आपका मार्ग प्रशस्त होगा।

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द